लेफ्टिनेंट कर्नल खजूर सिंह

बनाम

भारत संघ एवं अन्य

(बी.पी.सिन्हा, सी.जे., जे.एल.कपूर,
पी.बी.गजेंद्रगढ़कर, के.सुब्बा राव, के.एन.वांचू,
के.सी.दास गुप्ता और जे.सी.शाह, जे.जे.)

मौलिक अधिकार, उनका प्रवर्तन–भारत सरकार के विरुद्ध रिट जारी करने की उच्च न्यायालय की शक्ति–भारत का संविधान, अनुच्छेद 32(2ए), 226.

जम्मू और कश्मीर के हाई कोर्ट ने, इस कोर्ट के फ़ैसलों पर भरोसा करते हुए–जैसे कि भारतीय निर्वाचन आयोग बनाम साका वेंकटा सुब्बा राव, [1953] एस.सी.आर. 1144 और के. एस. राशिद एंड सन बनाम द इनकम टैक्स इन्वेस्टिगेशन कमीशन आदि, [1954] एस.सी.आर. 738 अपीलकर्ता द्वारा यूनियन ऑफ़ इंडिया एवं अन्य के ख़िलाफ़ अनुच्छेद 32(2ए) के तहत दायर एक रिट याचिका को ख़ारिज कर दिया। अनुच्छेद 32(2ए) के प्रासंगिक प्रावधान, मौलिक अधिकारों को लागू करने के मामले में, संविधान के अनुच्छेद 226 के प्रावधानों के समान ही हैं। याचिका को इस प्रारंभिक आपत्ति के आधार पर ख़ारिज किया गया कि उक्त याचिका यूनियन ऑफ़ इंडिया के ख़िलाफ़ सुनवाई योग्य नहीं थी, क्योंकि यह उस कोर्ट के क्षेत्रीय क्षेत्राधिकार से बाहर थी। अपीलकर्ता का पक्ष यह था कि वह जम्मू और कश्मीर में लेफ़्टिनेंट कर्नल के मूल पद पर कार्यरत था और उसे 20 नवंबर, 1961 को 53 वर्ष की आयु पूरी होने तक सेवा में बने रहने का अधिकार था; परंतु भारत सरकार द्वारा 31 जुलाई, 1954 को जारी एक पत्र के माध्यम से उसे समय से पूर्व ही सेवानिवृत्त कर दिया गया। यह कार्रवाई बिना किसी आरोप या अभियोग के की गई थी और यह संविधान के अनुच्छेद 16(1) का उल्लंघन थी।

अभिनिर्धारित - हाई कोर्ट द्वारा जिन निर्णयों पर भरोसा किया गया है, उनकी सही होने पर 'कोई संदेह नहीं हो सकता' और अपील खारिज हो जानी चाहिए।

संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत हाई कोर्ट का क्षेत्राधिकार–अगर सही ढंग से समझा जाए तो–आदेश से प्रभावित व्यक्ति के निवास या स्थान पर निर्भर नहीं करता, बल्कि उस व्यक्ति या प्राधिकरण पर निर्भर करता है जिसने आदेश पारित किया है; और वह स्थान जहाँ आदेश प्रभावी होता है, ऐसे क्षेत्राधिकार के निर्धारण में शामिल नहीं हो सकता। चूँकि सरकार के कामकाज का असल मतलब उसके आदेशों को प्रभावी बनाना होता है, इसलिए ऐसा कामकाज अनुच्छेद में आए शब्दों "इन क्षेत्रों के भीतर कोई भी व्यक्ति या प्राधिकरण" का अर्थ निर्धारित नहीं कर सकता। इसलिए, कोई भी प्राकृतिक व्यक्ति इन क्षेत्रों के भीतर तब माना जाएगा, यदि वह वहाँ स्थायी रूप से या अस्थायी रूप से निवास करता है; सरकार के अलावा कोई अन्य प्राधिकरण इन क्षेत्रों के भीतर तब माना जाएगा, यदि उसका कार्यालय वहाँ स्थित है; और कोई सरकार तब मानी जाएगी, यदि उसका मुख्यालय–जहाँ से वह वास्तव में कार्य करती है।

यह कहना सही नहीं है कि अनुच्छेद 220 में "प्राधिकारी" शब्द में सरकार शामिल नहीं हो सकती। इस शब्द को इसके ठीक बाद आने वाले वाक्यांश "जिसमें उचित मामलों में कोई सरकार भी शामिल है" के साथ मिलाकर पढ़ा जाना चाहिए; जिसका सही अर्थ यह है कि उचित मामलों में इस शब्द में कोई सरकार भी शामिल हो सकती है। यह वाक्यांश किसी रिट या आदेश को जारी करने से जुड़ा हुआ नहीं है, और इसका उद्देश्य उच्च न्यायालयों को किसी सरकार के विरुद्ध रिट या निर्देश जारी करने के मामले में कोई विवेकाधिकार प्रदान करना भी नहीं है; बल्कि इसका अर्थ केवल यह है कि ऐसे मामलों में, जहाँ वह प्राधिकारी–जिसके विरुद्ध रिट जारी करने का क्षेत्राधिकार उच्च न्यायालय के पास है – सरकार या उसके अधीनस्थ अधिकारी हों, तो उच्च न्यायालय उस सरकार के विरुद्ध रिट जारी कर सकता है।

भारतीय निर्वाचन आयोग बनाम साका वेंकट सुब्बा राव, [1953] एस.सी.आर. 1144 और के. एस. राशिद एंड सन बनाम आयकर जांच आयोग आदि, [1954] एस.सी.आर. 738, स्वीकृत।

मकबूल-उन-निस्सा बनाम यूनियन ऑफ़ इंडिया, आई.एल.आर. (1953) 2 ऑल. 289, निरस्त।

द लॉयड्स बैंक लिमिटेड बनाम द लॉयड्स बैंक इंडियन स्टाफ एसोसिएशन (कलकत्ता शाखाएँ), आई.एल.आर. [1954] 2 कलकत्ता 1, का संदर्भ दिया गया।

अनुच्छेद 226 के तहत कार्यवाही संविधान के अनुच्छेद 300 के अंतर्गत आने वाले मुकदमे नहीं हैं। इस तरह की कार्यवाही एक विशेष प्रक्रिया द्वारा असाधारण उपचार प्रदान करती है और इसके द्वारा लगाई गई स्पष्ट सीमा के सामने इसमें कार्रवाई के कारण की अवधारणा को पेश करने की कोई गुंजाइश नहीं है, कि संबंधित व्यक्ति या प्राधिकारी उन क्षेत्रों के भीतर होना चाहिए जिन पर उच्च न्यायालय क्षेत्राधिकार का प्रयोग करता है।

रैयत ऑफ़ गराबन्धो बनाम ज़मींदार ऑफ़ पार्लाकिमेडी, (1943) एल.आर. 70 आई.ए. 129, को लागू न होने योग्य माना गया।

अनुच्छेद 226 की ऐसी व्याख्या से, नई दिल्ली से दूर रहने वाले उन लोगों को जो असुविधा होती है–जहाँ वास्तव में भारत सरकार स्थित है और जो उसके द्वारा पारित किसी आदेश से पीड़ित हैं–वह इस अनुच्छेद में उचित संशोधन करने का एक कारण हो सकती है, लेकिन इससे इसकी स्पष्ट भाषा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता।

इस न्यायालय को सिवाय तब के, जब यह सभी उचित संदेहों से परे सिद्ध हो जाए कि, समुचित विचार-विमर्श और पूर्ण सुनवाई के पश्चात् दिया गया पूर्व निर्णय त्रुटिपूर्ण था ,उससे पीछे नहीं

हटना चाहिए; विशेष रूप से किसी संवैधानिक मुद्दे पर।

न्यायमूर्ति सुब्बा राव के अनुसार–हमारे संविधान निर्माताओं का उद्देश्य, जिसके तहत उन्होंने संविधान के भाग III में मौलिक अधिकारों की घोषणा की और संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालयों को इन अधिकारों को लागू करने का अधिकार दिया, काफी हद तक विफल हो जाएगा, यदि देश के किसी दूरदराज के हिस्से में रहने वाले किसी व्यक्ति को, जब भी केंद्र सरकार उसके मौलिक अधिकार का उल्लंघन करे, तो पंजाब उच्च न्यायालय से संरक्षण प्राप्त करने के लिए नई दिल्ली आना पड़े।

संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालयों की शक्ति अत्यंत व्यापक है, और वे न केवल रिट जारी कर सकते हैं, बल्कि निर्देश और आदेश भी जारी कर सकते हैं।

इस अनुच्छेद में "कोई भी सरकार" शब्दों में केंद्र सरकार भी शामिल है, जिसका किसी एक खास जगह पर कोई संवैधानिक स्थान नहीं है और जो पूरे भारत में अपनी शक्तियों का इस्तेमाल करती है; इसलिए, कानून की नज़र में यह माना जाएगा कि उसका कार्यात्मक अस्तित्व पूरे भारत में है, और इस तरह हर राज्य के क्षेत्रों के भीतर भी है। नतीजतन, जब केंद्र सरकार किसी हाई कोर्ट के क्षेत्रीय अधिकार क्षेत्र में रहने वाले किसी व्यक्ति के कानूनी अधिकार और हितों का उल्लंघन करती है, तो इस अनुच्छेद के तहत हाई कोर्ट के पास उस सरकार को रिट जारी करने की शक्ति होती है। यदि उस सरकार या उसके किसी अधिकारी द्वारा उसके आदेशों की अवहेलना की जाती है भले ही वे भौतिक रूप से उसके अधिकार क्षेत्र से बाहर हों तो वह ' कोण्टेंप्त ऑफ कोर्ट एक्ट, 1952' के तहत उनके विरुद्ध अवमानना की कार्यवाही कर सकता है।

निर्वाचन आयोग बनाम साका वेंकट सुब्बा राव, [1953] एस.सी.आर. 1144, को लागू न होने योग्य माना गया।

के. एस. राशिद एंड सन बनाम आयकर जाँच आयोग, (1954) एस.सी.आर. 738 और रैयत ऑफ़ गराबन्धो बनाम ज़मींदार ऑफ़ पार्लाकिमेडी, (1943) एल.आर. 70 आई.ए. 129, पर विचार किया गया।

मकबूल-उन-निस्सा बनाम यूनियन ऑफ़ इंडिया, आई.एल.आर. (1953) 2 ऑल. 289, स्वीकृत।

सूरजमल बनाम मध्य प्रदेश राज्य, ए.आई.आर. 1958 एम.पी. 103 और राधेश्याम माखनलाल बनाम यूनियन ऑफ़ इंडिया, ए.आई.आर. 1960 बॉम्बे. 353, को लागू न होने योग्य माना गया।

अतः, प्रस्तुत मामले में, उच्च न्यायालय के पास संविधान के अनुच्छेद 32(2A) के अंतर्गत केंद्र सरकार को रिट जारी करने की शक्ति थी।

दास गुप्ता, जे. के अनुसार–किसी भी सरकार के स्थान के बारे में बात करना न तो सही है और न ही उचित; और भारत सरकार के स्थान का पता लगाने के लिए कोई संतोषजनक पैमाना भी नहीं है। चूंकि सरकार पूरे भारत क्षेत्र में कार्य करती है, इसलिए निष्कर्ष यही निकलता है कि वह प्रत्येक उच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र में आने वाले क्षेत्रों के भीतर ही स्थित है। अनुच्छेद 226 में प्रयुक्त शब्द "कोई भी सरकार" स्पष्ट रूप से यह संकेत देते हैं कि उच्च न्यायालय का उद्देश्य उस सरकार के विरुद्ध भी राहत प्रदान करना था।

भले ही भारत सरकार हर हाई कोर्ट के अधिकार क्षेत्र में आती हो, फिर भी उसे एक ही आदेश

के खिलाफ राहत मांगने वाली अर्जियों का सामना भारत के सभी हाई कोर्ट में नहीं करना पड़ेगा। उस अनुच्छेद में इस्तेमाल किए गए शब्द "उचित मामलों में" का सही अर्थ यह है कि, हर उस काम या चूक के संबंध में जिसके लिए राहत मांगी गई है, उस अनुच्छेद के तहत केवल एक ही हाई कोर्ट ऐसा हो सकता है जो अपना अधिकार क्षेत्र इस्तेमाल कर सके। हर मामले में यह पता लगाना संभव है कि वह काम या चूक किस जगह हुई थी, और केवल वही हाई कोर्ट जिसका उस जगह पर अधिकार क्षेत्र है उस अनुच्छेद के तहत राहत देने का अधिकार रख सकता है।

यह कहना सही नहीं है कि अनुच्छेद 226 के तहत, 'कॉज़ ऑफ़ एक्शन' (कार्य का कारण) ही क्षेत्राधिकार निर्धारित करता है। न तो वह अनुच्छेद और न ही संविधान का अनुच्छेद 32(2A) इस सिद्धांत पर आधारित है।

भारतीय निर्वाचन आयोग बनाम साका वेंकट सुब्बा राव, [1953] एस.सी.आर. 1144, स्वीकृत।

सिविल अपीलीय क्षेत्राधिकार: सिविल अपील संख्या 37/1955

जम्मू और कश्मीर उच्च न्यायालय के दिनांक 7 दिसंबर, 1954 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील, आपराधिक विविध संख्या 76/2011 में।

उच्च न्यायालय, जम्मू और कश्मीर के आपराधिक विविध संख्या 76/2011 में दिनांक 7 दिसंबर, 1954 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील।

अपीलकर्ता की ओर से अधिवक्ता - वीर सेन साहनी।

उत्तरदाताओं की ओर से अधिवक्तागण - सी. के. दफ्तरी(सॉलिसिटर-जनरल, भारत), बी. आर. एल. अयंगर, आर. एच. ढेबर और टी. एम. सेन।

हस्तक्षेपकर्ता की ओर से सरदार बहादुर।

1960. 5 दिसंबर सिन्हा मुख्य न्यायाधीश, तथा न्यायाधीशों कपूर, गजेंद्रगडकर, वानचू और शाह का निर्णय मुख्य न्यायाधीश सिन्हा द्वारा सुनाया गया। न्यायाधीश सुब्बा राव और न्यायाधीश दास गुप्ता ने अलग-अलग निर्णय सुनाए।

सिन्हा, मुख्य न्यायाधीश - जम्मू और कश्मीर उच्च न्यायालय द्वारा जारी 'फिटनेस प्रमाणपत्र' के आधार पर दायर यह अपील, 7 दिसंबर, 1954 के उस निर्णय और आदेश के विरुद्ध है, जो संविधान के अनुच्छेद 32(2A) के तहत दायर एक आवेदन पर दिया गया था। इस आवेदन में, यूनियन ऑफ़ इंडिया (जिसका प्रतिनिधित्व रक्षा मंत्रालय के सचिव, नई दिल्ली द्वारा प्रथम उत्तरदाता के रूप में किया गया) और जम्मू और कश्मीर राज्य (जिसका प्रतिनिधित्व जम्मू और कश्मीर राज्य के मुख्य सचिव द्वारा द्वितीय उत्तरदाता के रूप में किया गया) के विरुद्ध कोई रिट, निर्देश या आदेश जारी करने की मांग की गई थी।

यह याचिका निम्नलिखित आरोपों पर आधारित है। इस फैसले के दौरान याचिकाकर्ता को 'अपीलकर्ता' के रूप में संबोधित किया जाएगा। 12 अगस्त, 1954 को उनकी आयु 45 वर्ष 262 दिन थी। वे जम्मू और कश्मीर राज्य बलों में एक नियमित कमीशन पर कार्यरत थे, जिन्हें

1 सितंबर, 1949 से संघ के रक्षा बलों के साथ मिला दिया गया था। इन विलय किए गए बलों में 'लेफ्टिनेंट कर्नल' का मूल पद (substantive rank) धारण करने वाले अपीलकर्ता को 53 वर्ष की आयु प्राप्त करने तक सेवा में बने रहने का अधिकार था; यह आयु वे 20 नवंबर, 1961 को पूरी करते। भारत सरकार ने 31 जुलाई, 1954 को एक पत्र जारी किया, जिसके द्वारा अपीलकर्ता को 12 अगस्त, 1954 से सेवा से सेवानिवृत्त कर दिया गया। भारत सरकार का यह निर्णय अपीलकर्ता की ओर से अक्षमता, अनुशासनहीनता या किसी अन्य अनियमितता के किसी भी आरोप या शिकायत पर आधारित नहीं है। भारत सरकार के उक्त निर्णय को, जिसके द्वारा अपीलकर्ता को समय से पूर्व सेवानिवृत्त किया गया है, अवैध, अनुचित और भेदभावपूर्ण बताते हुए चुनौती दी गई है; साथ ही यह भी तर्क दिया गया है कि यह निर्णय संविधान के अनुच्छेद 16(1) के उल्लंघन में लिया गया है।

उपर्युक्त प्रतिवादियों की ओर से याचिका का कई प्रारंभिक आधारों पर विरोध किया गया, जिनमें से केवल पहले आधार का उल्लेख करना ही आवश्यक है, अर्थात्, जिस प्राधिकारी के विरुद्ध रिट की मांग की गई है–यानी उत्तरदाता संख्या 1—वह जम्मू और कश्मीर उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार की क्षेत्रीय सीमाओं से बाहर है, इसलिए यह याचिका विचारणीय नहीं है। इस प्रारंभिक आपत्ति पर जम्मू और कश्मीर उच्च न्यायालय की एक खंडपीठ (जानकी नाथ वज़ीर, मुख्य न्यायाधीश और एम.ए. शाहमीरी, न्यायमूर्ति) द्वारा सुनवाई की गई। 7 दिसंबर, 1954 के अपने निर्णय द्वारा, उच्च न्यायालय ने इस प्रारंभिक आपत्ति को सही ठहराया। उच्च न्यायालय ने, इस न्यायालय के निर्णयों–'इलेक्शन कमीशन, इंडिया बनाम साका वेंकट सुब्बा राव (1)' और 'के.एस. राशिद एंड सन बनाम द इनकम-टैक्स इन्वेस्टिगेशन कमीशन आदि (2)'—पर भरोसा करते हुए, यह निर्णय दिया कि उसे प्रथम उत्तरदाता के विरुद्ध रिट जारी करने का कोई क्षेत्राधिकार प्राप्त नहीं है; अतः उसने याचिका को खारिज कर दिया। तथापि, उच्च न्यायालय ने संविधान के अनुच्छेद 132 के अंतर्गत आवश्यक प्रमाण-पत्र प्रदान कर दिया; जिसके परिणामस्वरूप यह अपील प्रस्तुत की गई है।

इस मामले की सुनवाई सबसे पहले पाँच जजों की एक बेंच ने की थी। सुनवाई के दौरान हमें यह स्पष्ट हो गया कि अपीलकर्ता ने न केवल इस न्यायालय के उपर्युक्त दो निर्णयों को अलग

(1) [1953] एस.सी.आर. 1144 (2) [1914] एस.सी.आर. 738

दिखाने का प्रयास किया, बल्कि उन निर्णयों की सत्यता पर भी प्रश्न उठाया। अतः, इस न्यायालय के उन उपर्युक्त निर्णयों की सत्यता की जाँच करने के उद्देश्य से इस बड़ी बेंच का गठन किया गया, जिनके आधार पर उच्च न्यायालय ने अपीलकर्ता की याचिका को उसके गुण-दोष के आधार पर स्वीकार करने से इनकार कर दिया था।

अपीलकर्ता की ओर से, सबसे पहले, यह तर्क दिया गया है कि इस न्यायालय के पिछले निर्णय इस आधार पर अलग माने जा सकते हैं कि उन्होंने स्पष्ट रूप से इस प्रश्न पर विचार नहीं किया था कि क्या भारत सरकार संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार के अधीन है, या अनुच्छेद 32(2ए) के तहत जम्मू और कश्मीर उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार के अधीन है; कि उन प्रावधानों की सही व्याख्या करने पर, वे अपीलकर्ता के रास्ते में बाधा नहीं बनेंगे, क्योंकि भारत सरकार का कोई निश्चित स्थान नहीं है और उसका अधिकार पूरे केंद्र शासित प्रदेश में मौजूद है; कि सही कसौटी यह है कि क्या 'कॉज़ ऑफ़ एक्शन' (मुकदमे का आधार) उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार की क्षेत्रीय सीमाओं के भीतर उत्पन्न हुआ था या नहीं; और यह कि उच्च न्यायालय ने यह मानने में गलती की कि "प्राधिकरण" (authority) शब्द में सरकार भी शामिल है।

अपीलकर्ता की ओर से इन दलीलों के जवाब में, विद्वान सॉलिसिटर-जनरल ने तर्क दिया कि, संविधान के संबंधित प्रावधानों की सही व्याख्या करने पर, यह स्पष्ट है कि 'इलेक्शन कमीशन, इंडिया बनाम साका वेंकट सुब्बा राव (¹)' मामले में शास्त्री, मुख्य न्यायाधीश की 'प्राधिकरण' (authority) से संबंधित टिप्पणियाँ, सरकार पर - जिसमें केंद्र सरकार भी शामिल है - समान रूप से लागू होती हैं। भारत सरकार अपने अधिकारियों के माध्यम से कार्य करती है और इसलिए, जिस 'स्थान' (location) की परिकल्पना की गई है, उसका अर्थ वह स्थान है जहाँ आमतौर पर विवादित आदेश पारित किए जाते हैं। किसी मुकदमे में 'वाद-हेतु' (कॉज़ ऑफ एक्शन) के संदर्भ में विचार किए जाने वाले पहलू, रिट मामलों में समान आधार पर नहीं होते, क्योंकि रिट को संबंधित सरकार के विशिष्ट अधिकारियों तक पहुँचना होता है। 'उपयुक्त मामलों में' अभिव्यक्ति का अर्थ यह है कि ऐसे मामले हो सकते हैं जहाँ, यद्यपि केंद्र सरकार स्वयं किसी उच्च न्यायालय की क्षेत्रीय सीमाओं के भीतर स्थित नहीं है, फिर भी उच्च न्यायालय उसके विरुद्ध रिट जारी कर सकते हैं; ऐसा इसलिए क्योंकि केंद्र सरकार का कोई अधिकारी उन सीमाओं के

(1) [1953] एस.सी.आर. 1144

भीतर कार्य कर रहा होता है और उसी का आदेश विवाद का विषय होता है। इसलिए, ऐसा हर मामले में नहीं होता कि कोई उच्च न्यायालय केंद्र सरकार के विरुद्ध रिट जारी कर सके। उदाहरण के लिए, 'परमादेश रिट' (Writ of Mandamus) किसी विशिष्ट नामित व्यक्ति या प्राधिकरण के विरुद्ध निर्देशित होती है। इसी प्रकार, 'उत्प्रेषण रिट' (Writ of Certiorari) किसी विशिष्ट अभिलेख के विरुद्ध निर्देशित होती है। अतः, रिट अनिवार्य रूप से किसी ऐसे व्यक्ति को जारी की जानी चाहिए जो उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार की क्षेत्रीय सीमाओं के भीतर स्थित हो।

इस मामले में हमें जिस सवाल का फ़ैसला करना है, वह बहुत दूरगामी महत्व का है और यह कोई नया मामला नहीं है। यह सवाल सबसे पहले 1952 में इस अदालत में उठाया गया था और एक संविधान पीठ ने 'इलेक्शन कमीशन, इंडिया बनाम साका वेंकट सुब्बा राव (1)' मामले में इसका फ़ैसला किया था। उस मामले में, मद्रास हाई कोर्ट में एक रिट याचिका दायर की गई थी, जिसमें इलेक्शन कमीशन को उत्तरदाता की कथित अयोग्यता की जाँच करने से रोकने की माँग की गई थी। जब हाई कोर्ट के विद्वान एकल न्यायाधीश ने इस मामले की सुनवाई की, तो मद्रास हाई कोर्ट के एक एकल न्यायाधीश ने इलेक्शन कमीशन के ख़िलाफ़ 'निषेध रिट' (writ of prohibition) जारी कर दी; इलेक्शन कमीशन भारत के राष्ट्रपति द्वारा गठित एक वैधानिक संस्था है, जिसका स्थायी कार्यालय नई दिल्ली में स्थित है। हाई कोर्ट में, इlेक्शन कमीशन ने अपने ख़िलाफ़ कोई भी रिट जारी करने के अदालत के अधिकार क्षेत्र पर यह कहते हुए आपत्ति जताई कि कमीशन उस क्षेत्र की सीमा के भीतर नहीं आता है, जिसके संबंध में हाई कोर्ट को अधिकार क्षेत्र प्राप्त है; इसके अलावा भी कमीशन ने कुछ अन्य आपत्तियाँ उठाई थीं। हाई कोर्ट के विद्वान न्यायाधीश ने इस प्रारंभिक आपत्ति को ख़ारिज कर दिया और मामले का फ़ैसला उसके गुण-दोष के आधार पर किया, तथा एक रिट जारी करके कमीशन को जाँच आगे बढ़ाने से रोक दिया। विद्वान न्यायाधीश ने संविधान के अनुच्छेद 132 के तहत यह प्रमाण पत्र जारी किया कि इस मामले में संविधान की व्याख्या से संबंधित कानून का एक महत्वपूर्ण प्रश्न निहित है। इसके परिणामस्वरूप, इलेक्शन कमीशन ने इस अदालत में अपील दायर की और मद्रास हाई कोर्ट द्वारा जारी की गई रिट को जारी करने के उसके अधिकार क्षेत्र को चुनौती दी। इस अदालत ने उत्तरदाता की ओर से पेश की गई उस दलील को ख़ारिज कर दिया, जो

(1) [1953] एस.सी.आर. 1144

'पारलाकिमेडी मामले ([1])' में प्रिवी काउंसिल के फ़ैसले पर आधारित थी। उस दलील के अनुसार, रिट जारी करने का हाई कोर्ट का अधिकार क्षेत्र, किसी अदालत के उस अधिकार क्षेत्र के समान होता है, जिसके तहत वह अपनी स्थानीय सीमा से बाहर रहने वाले व्यक्तियों के ख़िलाफ़ कोई डिक्री या आदेश जारी कर सकती है, बशर्ते कि उस मामले का कारण (कॉज़ ऑफ एक्शन) उन्हीं सीमाओं के भीतर उत्पन्न हुआ हो। इस अदालत ने उस दलील को निम्नलिखित शब्दों में ख़ारिज कर दिया:-

"मुकदमों में 'मुकदमे का आधार' (कॉज़ ऑफ एक्शन) के आधार पर क्षेत्राधिकार तय होने का नियम वैधानिक प्रावधानों पर आधारित है, और यह अनुच्छेद 226 के तहत जारी की जाने वाली रिटों पर लागू नहीं हो सकता; क्योंकि यह अनुच्छेद न तो किसी 'कॉज़ ऑफ़ एक्शन' का ज़िक्र करता है और न ही यह बताता है कि वह कहाँ उत्पन्न हुआ है, बल्कि यह इस बात पर ज़ोर देता है कि संबंधित व्यक्ति या प्राधिकारी 'उन क्षेत्रों के भीतर' मौजूद होना चाहिए, जिनके संबंध में उच्च न्यायालय अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग करता है।"

उस मामले में संविधान पीठ ने यह माना कि संविधान के अनुच्छेद 226 की भाषा "काफी स्पष्ट" थी और उस अनुच्छेद द्वारा प्रदत्त शक्ति का प्रयोग दोहरी सीमाओं के अधीन था, अर्थात्: **(1)** कि इस शक्ति का प्रयोग "उन समस्त क्षेत्रों में किया जाना है जिनके संबंध में वह अपना क्षेत्राधिकार रखती है" और **(2)** कि जिस व्यक्ति या प्राधिकारी को उच्च न्यायालय रिट जारी करने के लिए अधिकृत है, वह "उन क्षेत्रों के भीतर" ही होना चाहिए। दूसरे शब्दों में, न्यायालय की रिट उसके क्षेत्राधिकार के अधीन क्षेत्रों से बाहर प्रभावी नहीं हो सकती थी और रिट से प्रभावित व्यक्ति या प्राधिकारी, उन क्षेत्रों के भीतर निवास या अवस्थिति के आधार पर, न्यायालय के क्षेत्राधिकार के अधीन होना चाहिए।

इस न्यायालय का दूसरा मामला, जिसमें इस प्रश्न पर विचार किया गया था, के. एस. राशिद एंड सन बनाम आयकर जांच आयोग ([2]) है। यह मामला शिमला स्थित पंजाब उच्च न्यायालय के 10 अगस्त, 1950 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील में आया था। यह अपील कई विविध मामलों से संबंधित थी, जिनमें उच्च न्यायालय से संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के तहत यह प्रार्थना की गई थी कि अपीलकर्ताओं के विरुद्ध आय पर कराधान (जांच आयोग) अधिनियम (XXX/1947) के अंतर्गत शुरू की गई कार्यवाहियों को रद्द कर दिया जाए। उच्च

([1]) (1943) एल.आर. 70 आई.ए. 129 ([2]) (1954) एस.सी.आर. 738

न्यायालय में यह प्रार्थना की गई थी कि आयकर जांच आयोग के विरुद्ध 'निषेध रिट' (Writ of Prohibition) जारी की जाए, जिसमें आयोग को यह निर्देश दिया जाए कि वह अधिनियम के प्रावधानों के तहत उसे संदर्भित मामलों की जांच को आगे न बढ़ाए। उच्च न्यायालय में दायर इन रिट याचिकाओं का आयोग की ओर से कई आधारों पर विरोध किया गया; इनमें से एक आधार यह था कि पंजाब उच्च न्यायालय के पास संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत मांगी गई रिट जारी करने का कोई क्षेत्राधिकार नहीं है, क्योंकि आयोग दिल्ली में स्थित है। आयोग की ओर से परलाकिमेडी मामले (1) में प्रिवी काउंसिल के निर्णय पर भरोसा जताया गया। इस निर्णय का सार यह था कि मामले का मूल तथ्य यह है कि जिन करदाताओं (assesses) के विरुद्ध जांच शुरू की गई थी, वे उत्तर प्रदेश के निवासी थे, और उच्च न्यायालय को मामला संदर्भित करने सहित, कराधान से संबंधित समस्त कार्यवाहियां उत्तर प्रदेश में ही होनी चाहिए थीं। उच्च न्यायालय ने इस तर्क को स्वीकार करते हुए आवेदन को खारिज कर दिया; इसका मुख्य आधार यह था कि उच्च न्यायालय के पास आयोग को रिट जारी करने का कोई क्षेत्राधिकार नहीं है। इसके बाद, करदाताओं ने इस न्यायालय में अपील दायर की। इस न्यायालय ने अपने पिछले निर्णय – भारत निर्वाचन आयोग बनाम साका वेंकट सुब्बा राव (2)—में दिए गए तर्कों को ही इस मामले में भी मूल रूप से अपनाया। यह ध्यान देने योग्य बात है कि जब पंजाब उच्च न्यायालय ने इस मामले का निर्णय दिया था, तब इस न्यायालय का उपर्युक्त निर्णय अभी तक नहीं आया था। अपने पिछले निर्णय पर भरोसा करते हुए, इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि पंजाब उच्च न्यायालय का यह मानना त्रुटिपूर्ण था कि संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत इस मामले पर विचार करने का उसे कोई क्षेत्राधिकार प्राप्त नहीं है। तथापि, इस न्यायालय ने अपील को अन्य आधारों पर खारिज कर दिया, जो इस वर्तमान मामले के लिए प्रासंगिक नहीं हैं।

अपील करने वाले के अधिवकता ने कहा है कि इस कोर्ट के ऊपर बताए गए दो फैसले मौजूदा मामले के फैक्ट्स से अलग हैं, क्योंकि उन मामलों में इलेक्शन कमीशन और इनकम-टैक्स इन्वेस्टिगेशन कमीशन कानूनी संस्थाएं थीं, जिनका लोकेशन दिल्ली में था, और इसलिए, इस कोर्ट ने माना कि पंजाब हाई कोर्ट वह हाई कोर्ट था जिसके अधिकार क्षेत्र में वे संस्थाएं काम करती थीं और उनका लोकेशन था और इसलिए, वे उसके अधिकार क्षेत्र के अधीन थे। उन्होंने आगे कहा कि केंद्र सरकार पूरे भारत में काम करती है और सिर्फ इसलिए यह नहीं कहा जा

(1) (1943) एल.आर. 70 आई.ए. 129 (2) [1953] एस.सी.आर. 1144

सकता कि वह सिर्फ दिल्ली में है क्योंकि उस समय राजधानी दिल्ली में थी। इस संबंध में, मकबूलुन्निसा बनाम यूनियन ऑफ इंडिया (1) में इलाहाबाद हाई कोर्ट की फुल बेंच के फैसले पर पूरा भरोसा किया गया। वह मामला अपील करने वाले की ओर से इस दलील को काफी सपोर्ट करता है। उस मामले में हाई कोर्ट ने माना था कि आर्टिकल में "कोई भी सरकार" शब्द। संविधान की धारा 226(1) में साफ़ तौर पर बताया गया था कि इलाहाबाद हाई कोर्ट के पास आर्टिकल 226 के तहत याचिका पर सुनवाई करने का अधिकार है, न सिर्फ़ उत्तर प्रदेश राज्य के ख़िलाफ़, बल्कि केंद्र सरकार के ख़िलाफ़ भी, क्योंकि उसने एक रिट जारी की थी जिसमें सरकार को याचिकाकर्ता को भारत छोड़ने के आदेश को लागू करने से रोकने का निर्देश दिया गया था। फ़ैसले का नतीजा यह था कि, भले ही भारत सरकार की राजधानी दिल्ली में है, लेकिन उसकी एग्जीक्यूटिव पावर पूरे भारत में फैली हुई है और अधिकार क्षेत्र तय करने का असली टेस्ट याचिकाकर्ताओं का घर और उन पर विवादित आदेश का असर होगा। यह मानने के बाद कि हाई कोर्ट के पास याचिका पर सुनवाई करने का अधिकार है, कोर्ट ने इसे दूसरे आधारों पर खारिज कर दिया, जो इस मामले के लिए ज़रूरी नहीं थे। इलाहाबाद हाई कोर्ट ने द लॉयड्स बैंक लिमिटेड बनाम द लॉयड्स बैंक इंडियन स्टाफ़ एसोसिएशन (कलकत्ता ब्रांचेज़) (2) मामले में 17 जनवरी, 1951 को कलकत्ता हाई कोर्ट की एक डिवीजन बेंच के फ़ैसले को अलग रखा, जिसकी तब तक कोई रिपोर्ट नहीं आई थी। उस केस में, कोर्ट की तरफ से बोलते हुए, हैरिस, सी. जे. ने कहा था कि हालांकि संविधान का आर्टिकल 226 इंग्लिश प्रैक्टिस से आगे निकल गया था, जिसमें यह प्रोरोगेटिव रिट के तौर पर सरकार के खिलाफ भी जारी किया जा सकता था, लेकिन वह सरकार उस कोर्ट की टेरिटोरियल लिमिट के अंदर होनी चाहिए जिसे उस आर्टिकल के तहत अपनी पावर का इस्तेमाल करने के लिए कहा गया था। उन्होंने आगे कहा कि भारत सरकार को पश्चिम बंगाल राज्य में मौजूद नहीं कहा जा सकता और इसलिए, आर्टिकल 226 के तहत रिट कलकत्ता हाई कोर्ट द्वारा उस सरकार के खिलाफ जारी नहीं की जा सकती। कलकत्ता हाई कोर्ट के उस फ़ैसले को इलाहाबाद हाई कोर्ट ने इस आधार पर अलग माना कि "केंद्र सरकार के आदेशों का असर कोर्ट के अधिकार क्षेत्र में लागू नहीं था।" यह भी बताया जा सकता है कि वह फ़ैसला अपील में इस कोर्ट के सामने सिविल अपील नंबर 42/1952 के तौर पर आया था,

(1) आई.एल.आर. (1953) 2 ऑल. 289 (2) आई.एल.आर. [1954] 2 कलकत्ता. 1.

लेकिन इस कोर्ट ने 20 अप्रैल, 1952 के अपने फ़ैसले से उस अपील को दूसरे आधारों पर खारिज कर दिया था। यह ध्यान देने वाली बात है कि जब इलाहाबाद हाई कोर्ट का वह फ़ैसला आया था, जिस पर अपील करने वाले ने इतना ज़्यादा भरोसा किया था, तब इस कोर्ट के ऊपर बताए गए दो फ़ैसले मौजूद नहीं थे। अगर उस समय इस कोर्ट के वे दो फ़ैसले मौजूद होते, तो शायद इलाहाबाद हाई Court वह फ़ैसला नहीं देता।

इसलिए, दो मुख्य सवाल जो उठते हैं, वे ये हैं: **(i)** क्या भारत सरकार को, अपने आप में, किसी खास जगह–यानी नई दिल्ली–में स्थित माना जा सकता है, इस बात से बेपरवाह कि उसका अधिकार सभी राज्यों पर फैला हुआ है और उसके अधिकारी पूरे भारत में काम करते हैं; और **(ii)** क्या अनुच्छेद 226 के तहत क्षेत्राधिकार के प्रयोग के आधार के रूप में ' मुकदमे के कारण' (कॉज़ ऑफ एक्शन) की अवधारणा को लागू करने की कोई गुंजाइश है? हालाँकि, इन दो मुख्य सवालों पर चर्चा करने से पहले, हम दो सहायक मामलों के संबंध में स्थिति स्पष्ट करना चाहेंगे, जिन्हें अपीलकर्ता की ओर से उठाया गया है।

पहला तर्क यह है कि अनुच्छेद 226 में प्रयुक्त शब्द "प्राधिकारी" में सरकार शामिल नहीं हो सकती और न ही है। हम इस तर्क से सहमत नहीं हैं। "प्राधिकारी" शब्द की व्याख्या करते समय, हमें उसके ठीक बाद आने वाले उपबंध पर ध्यान देना चाहिए। अनुच्छेद 226 उन क्षेत्रों के भीतर "किसी भी व्यक्ति या प्राधिकारी को–जिसमें उचित मामलों में कोई सरकार भी शामिल है–आदेश जारी करने" का प्रावधान करता है। यह स्पष्ट है कि "उचित मामलों में कोई सरकार भी शामिल है" वाला उपबंध, उससे पहले आए शब्द "प्राधिकारी" के साथ जुड़ा है; और एक सीधी व तर्कसंगत व्याख्या के अनुसार, इसका अर्थ यह है कि इस संदर्भ में "प्राधिकारी" शब्द के अंतर्गत, उचित मामलों में, कोई सरकार भी शामिल हो सकती है। यह सुझाव कि उक्त उपबंध का उद्देश्य, किसी सरकार को रिट या निर्देश जारी करने के मामले में उच्च न्यायालयों को विवेकाधिकार प्रदान करना है, हमें स्पष्ट रूप से आधारहीन प्रतीत होता है।

इस खंड को किसी रिट या आदेश जारी करने से जोड़ना, और यह सुझाव देना कि सरकार के विरुद्ध मामलों से निपटते समय, उच्च न्यायालय को यह निर्णय लेना होता है कि क्या वह मामला आदेश जारी करने के लिए उपयुक्त है–व्याकरण के नियमों के अनुसार स्पष्ट रूप से उचित नहीं है। हमें यह मानने में कोई संकोच नहीं है कि उक्त खंड शब्द "प्राधिकारी" (authority) के साथ जुड़ा है, और इसका आशय यह है कि जिस प्राधिकारी के विरुद्ध रिट या उपयुक्त आदेश जारी करने का क्षेत्राधिकार उच्च न्यायालय को प्रदान किया गया है, उसमें कुछ मामलों में सरकार भी शामिल हो सकती है। इस संदर्भ में "उपयुक्त मामले" का अर्थ ऐसे मामलों से है जिनमें सरकार या उसके अधीनस्थ अधिकारियों द्वारा पारित आदेशों को चुनौती दी जाती है; अतः इस खंड का अर्थ यह है कि जहाँ ऐसे आदेशों को चुनौती दी जाती है, वहाँ उच्च न्यायालय सरकार के विरुद्ध रिट जारी कर सकता है। इसलिए, स्थिति यह है कि अनुच्छेद 226 के अंतर्गत, उच्च न्यायालय को यह शक्ति प्रदान की गई है कि वह किसी भी व्यक्ति या प्राधिकारी को–अथवा किसी विशिष्ट मामले में किसी सरकार को भी–भाग III द्वारा प्रदत्त अधिकारों के प्रवर्तन हेतु, तथा किसी अन्य प्रयोजन हेतु, उसमें विनिर्दिष्ट रिट या आदेश जारी कर सके। इस प्रकार, हमारे समक्ष उठाए गए दो गौण बिंदुओं पर विचार करने के पश्चात्, अब हम उन दो मुख्य तर्कों पर विचार करने की ओर अग्रसर हो सकते हैं, जो इस वर्तमान अपील में हमारे निर्णय हेतु उपस्थित हुए हैं।

इससे हम पहले सवाल पर आते हैं, यानी, क्या भारत सरकार को, अपने आप में, किसी एक जगह पर स्थित कहा जा सकता है–खास तौर पर, नई दिल्ली में? इस संबंध में मुख्य तर्क यह है कि भारत सरकार हर जगह मौजूद है और पूरे भारत के इलाके में काम कर रही है; इसलिए, हर हाई कोर्ट के पास उसके खिलाफ रिट जारी करने की शक्ति है, क्योंकि यह मान लिया जाना चाहिए कि वह सभी राज्यों के हाई कोर्ट के क्षेत्रीय अधिकार क्षेत्र के भीतर स्थित है। हमारी राय में, यह तर्क सरकार के 'स्थान' की अवधारणा को उसके 'काम करने' की अवधारणा के साथ मिला देता है। कोई सरकार पूरे राज्य या पूरे भारत में काम कर सकती है; लेकिन वह निश्चित रूप से पूरे राज्य या पूरे भारत में स्थित नहीं होती। यह सच है कि संविधान में यह प्रावधान नहीं है कि भारत सरकार का मुख्यालय नई दिल्ली में होगा। हालाँकि, इसका मतलब यह नहीं है कि भारत सरकार का, अपने आप में, कोई ऐसा मुख्यालय नहीं है जहाँ वह स्थित हो। यह

आम जानकारी है कि भारत सरकार का मुख्यालय नई दिल्ली में है और सरकार, अपने आप में, नई दिल्ली में ही स्थित है। संविधान में किसी प्रावधान के न होने से इस तथ्य पर कोई फर्क नहीं पड़ता। इसलिए, हमें यह देखना है कि क्या अनुच्छेद 226 के शब्दों का यह अर्थ है कि जिस व्यक्ति या प्राधिकरण के खिलाफ रिट जारी की जानी है, उसे रिट जारी करने वाले हाई कोर्ट के अधिकार क्षेत्र के भीतर निवासी या स्थित होना चाहिए? अनुच्छेद 226 के प्रासंगिक शब्द ये हैं–

"हर हाई कोर्ट के पास यह अधिकार होगा...कि वह उन इलाकों के अंदर...किसी भी व्यक्ति या संस्था को...आदेश जारी कर सके।" जहाँ तक किसी आम व्यक्ति की बात है, इसमें कोई शक नहीं कि वह उन इलाकों के अंदर तभी माना जाएगा, जब वह वहाँ हमेशा के लिए या कुछ समय के लिए रहता हो। जहाँ तक किसी संस्था की बात है, इसमें कोई शक नहीं कि अगर उसका दफ़्तर उन इलाकों में है, तो वह उस इलाके के अंदर ही मानी जाएगी। लेकिन क्या इन शब्दों का किसी संस्था के मामले में यह मतलब है कि भले ही उसका दफ़्तर उन इलाकों में न हो, फिर भी उसे उन इलाकों के अंदर माना जाएगा, क्योंकि उसके आदेश का असर उन इलाकों में रहने वाले लोगों पर पड़ सकता है? अब यह साफ़ है कि आर्टिकल 226 के तहत हाई कोर्ट को दिया गया अधिकार क्षेत्र, राहत के लिए अर्ज़ी देने वाले व्यक्ति के रहने की जगह या ठिकाने पर निर्भर नहीं करता; यह सिर्फ़ उस व्यक्ति या संस्था पर निर्भर करता है, जिसके ख़िलाफ़ रिट जारी करने की माँग की जा रही है, और जो उन इलाकों के अंदर मौजूद हो। इसलिए हमें लगता है कि हाई कोर्ट के अधिकार क्षेत्र को तय करने के लिए, आर्टिकल 226 में उस व्यक्ति के रहने की जगह या ठिकाने को शामिल करना सही नहीं है, जिस पर जारी किए गए आदेश का असर पड़ रहा हो। वह अधिकार क्षेत्र तो उस व्यक्ति या संस्था पर निर्भर करता है, जिसने आदेश जारी किया है और जो उन इलाकों के अंदर मौजूद है; जिस व्यक्ति पर आदेश का असर पड़ रहा है, उसके रहने की जगह या ठिकाने का हाई कोर्ट के अधिकार क्षेत्र के सवाल से कोई लेना-देना नहीं है। इसलिए, उदाहरण के लिए, अगर कोई व्यक्ति जो बंबई में रहता है या वहाँ मौजूद है, किसी ऐसी संस्था के आदेश से परेशान है जो, मान लीजिए, कलकत्ता में मौजूद है, तो उसे राहत के लिए बंबई हाई कोर्ट में नहीं जाना होगा - भले ही उस आदेश का असर उस पर बंबई में ही क्यों न पड़ रहा हो - बल्कि उसे कलकत्ता हाई कोर्ट में जाना होगा, जहाँ वह संस्था मौजूद है जिसने आदेश जारी किया है। इसलिए, हमारी राय में, अनुच्छेद 226 के तहत राहत देने वाले हाई कोर्ट के अधिकार क्षेत्र को तय करने के लिए, अनुच्छेद 226 में उस जगह

की अवधारणा को शामिल करना गलत होगा जहाँ पारित आदेश का प्रभाव पड़ता है। ऐसी अवधारणा को शामिल करने से भ्रम और अधिकार क्षेत्रों के बीच टकराव पैदा हो सकता है। उदाहरण के लिए, कलकत्ता में किसी अधिकारी द्वारा पारित एक आदेश का मामला लें, जो छह भाइयों को प्रभावित करता है, जो मान लीजिए, बंबई, मद्रास, इलाहाबाद, जबलपुर, जोधपुर और चंडीगढ़ में रहते हैं। इस प्रकार, कलकत्ता के अधिकारी द्वारा पारित आदेश ने छह राज्यों के लोगों को प्रभावित किया है। क्या यह कहा जा सकता है कि अनुच्छेद 226 का आशय यह है कि उन सभी छह हाई कोर्टों के पास इसके तहत राहत देने का अधिकार क्षेत्र है? यदि कोई भ्रम और अधिकार क्षेत्र के टकराव से बचना चाहता है, तो इसका उत्तर स्पष्ट रूप से 'नहीं' ही होगा। जैसा कि हम अनुच्छेद 226 के प्रासंगिक शब्दों (ऊपर उद्धृत) को पढ़ते हैं, इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता कि उस अनुच्छेद द्वारा किसी हाई कोर्ट को दिया गया अधिकार क्षेत्र, आदेश पारित करने वाले व्यक्ति या अधिकारी के स्थान या निवास के संबंध में है; और यह तय करने के लिए कि कौन सा हाई कोर्ट इसके तहत राहत दे सकता है, उस जगह की अवधारणा को शामिल करने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता जहाँ आदेश का प्रभाव पड़ना है। यह सच है कि यह न्यायालय संविधान में प्रयुक्त शब्दों को ऐसा अर्थ देगा जो उसके सुचारू रूप से कार्य करने में सहायक हो। यदि हम अनुच्छेद 226 में उस जगह की अवधारणा को शामिल करते हैं जहाँ आदेश का प्रभाव पड़ना है, तो हम उन उद्देश्यों को आगे नहीं बढ़ा रहे होंगे जिनके लिए अनुच्छेद 226 बनाया गया है। इसके विपरीत, हम विभिन्न हाई कोर्टों के बीच अधिकार क्षेत्र का टकराव पैदा कर रहे होंगे, जैसा कि ऊपर दिए गए उदाहरण से पहले ही दिखाया जा चुका है। इसलिए, किसी आदेश का प्रभाव–चाहे वह किसी के द्वारा भी पारित किया गया हो–उस हाई कोर्ट के अधिकार क्षेत्र को तय करने में कोई प्रासंगिकता नहीं रख सकता जो अनुच्छेद 226 के तहत कार्रवाई कर सकता है। अब, सरकार का कामकाज वास्तव में उसके द्वारा पारित आदेशों को प्रभावी बनाने के अलावा और कुछ नहीं है। इसलिए, "उन क्षेत्रों के भीतर कोई भी व्यक्ति या अधिकारी" शब्दों का अर्थ निर्धारित करते समय, अनुच्छेद 226 में सरकार के कामकाज की अवधारणा को शामिल करना सही नहीं होगा। इन शब्दों में 'कार्य करने' की अवधारणा को शामिल करके, हम वही टकराव पैदा कर देंगे जो तब पैदा होता, यदि अनुच्छेद 226 में उस 'स्थान' की अवधारणा को शामिल किया जाता, जहाँ आदेश को प्रभावी होना है। इसलिए, इस निष्कर्ष से बचने का कोई रास्ता नहीं है कि अनुच्छेद 226 में ये शब्द उस स्थान का ज़िक्र नहीं

करते जहाँ सरकार कार्य कर रही हो, बल्कि केवल उस स्थान का ज़िक्र करते हैं जहाँ कोई व्यक्ति या प्राधिकारी या तो निवासी है या स्थित है। अतः, जहाँ तक किसी 'प्राकृतिक व्यक्ति' (आम नागरिक) का संबंध है, वह उन क्षेत्रों के अंतर्गत माना जाएगा, यदि वह वहाँ स्थायी रूप से या अस्थायी रूप से निवास करता है। जहाँ तक किसी 'प्राधिकारी' (सरकार के अलावा) का संबंध है, वह उन क्षेत्रों के अंतर्गत माना जाएगा, यदि उसका कार्यालय वहाँ स्थित है। जहाँ तक किसी 'सरकार' का संबंध है, वह उन क्षेत्रों के अंतर्गत केवल तभी मानी जाएगी, यदि उसका मुख्यालय (सीट) उन क्षेत्रों के भीतर स्थित है।

विभिन्न देशों के संविधानों में कभी-कभी सरकार के मुख्यालय (सीट) का ज़िक्र होता है, लेकिन कई बार इसका ज़िक्र नहीं भी होता। लेकिन, चाहे संविधान में सरकार के मुख्यालय का ज़िक्र हो या न हो, इसमें कोई शक नहीं कि असल में एक ऐसा मुख्यालय होता है जहाँ से सरकार अपना काम-काज करती है। अनुच्छेद 226 की ज़रूरत यह है कि वहाँ असल में निवास या स्थान होना चाहिए; इसलिए, अगर कोई ऐसा मुख्यालय है जहाँ से सरकार असल में काम करती है–भले ही उस मुख्यालय का ज़िक्र संविधान में न हो–तो जिस हाई कोर्ट के अधिकार क्षेत्र में वह मुख्यालय स्थित है, उस हाई कोर्ट के पास अनुच्छेद 226 के तहत अधिकार क्षेत्र होगा, जहाँ तक सरकार के आदेशों का सवाल है। इसलिए, इलेक्शन कमीशन, इंडिया बनाम साका वेंकट सुब्बा राव (1) और 'के.एस. राशिद एंड सन बनाम द इनकम-टैक्स इन्वेस्टिगेशन कमीशन (2)' मामलों में जो विचार अपनाया गया था, वह सही है। उस विचार के अनुसार, अनुच्छेद 226 के तहत रिट आदि जारी करने की हाई कोर्ट की शक्ति पर दोहरी सीमाएँ हैं: **(i)** इस शक्ति का प्रयोग 'उन क्षेत्रों में किया जाना चाहिए जिनके संबंध में वह अपना अधिकार क्षेत्र रखती है'— यानी, कोर्ट द्वारा जारी की गई रिट उसके अधिकार क्षेत्र से बाहर के क्षेत्रों में लागू नहीं हो सकतीं; और **(ii)** जिस व्यक्ति या प्राधिकरण को हाई कोर्ट ऐसी रिट जारी करने के लिए अधिकृत है, वह "उन क्षेत्रों के भीतर" होना चाहिए–जिसका स्पष्ट अर्थ यह है कि उन क्षेत्रों के भीतर निवास या स्थान के आधार पर वे हाई कोर्ट के अधिकार क्षेत्र के अधीन होने चाहिए।

इससे हम दूसरे बिंदु पर आते हैं, यानी, क्या अनुच्छेद 226 में मुकदमे का आधार (कॉज़ ऑफ

(1) [953] एस.सी.आर. 1144 **(2)** [1954] एस.सी.आर. 738

एक्शन) की अवधारणा को शामिल करना संभव है, ताकि जिस हाई कोर्ट के अधिकार क्षेत्र में कॉज़ ऑफ़ एक्शन उत्पन्न हुआ हो, वही उसके तहत आदेश पारित करने के लिए उचित कोर्ट हो। इस संबंध में, 'रायट्स ऑफ़ गराबन्धो बनाम ज़मींदार ऑफ़ पार्लाकिमेडी (1)' मामले में प्रिवी काउंसिल के फैसले पर भरोसा किया गया है। उस मामले में, प्रिवी काउंसिल ने यह माना था कि, भले ही विवादित आदेश बोर्ड ऑफ़ रेवेन्यू द्वारा पारित किया गया था जो मद्रास में स्थित था, फिर भी हाई कोर्ट के पास उस आदेश को रद्द करने वाली रिट जारी करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं होगा; क्योंकि, कुछ विशेष मामलों को छोड़कर, मद्रास शहर की सीमाओं के बाहर रिट जारी करने का उसे कोई अधिकार क्षेत्र प्राप्त नहीं था, और वह विशेष मामला उन अपवादों की श्रेणी में नहीं आता था। प्रिवी काउंसिल का यह निर्णय, स्पष्ट रूप से, हाई कोर्ट के रिट जारी करने के अधिकार क्षेत्र पर विचार करते समय, उस स्थान के तत्व को शामिल करता है जहाँ कॉज़ ऑफ़ एक्शन उत्पन्न हुआ था। हालाँकि, उस निर्णय का आधार, तीन प्रेसीडेंसी हाई कोर्टों द्वारा (सुप्रीम कोर्टों के उत्तराधिकारी के रूप में) रिट जारी करने का एक विशिष्ट ऐतिहासिक संदर्भ था; यद्यपि, 1800 के चार्टर के खंड 8 की शाब्दिक व्याख्या के आधार पर– जिसने मद्रास के सुप्रीम कोर्ट को अधिकार क्षेत्र प्रदान किया था–इस बात में शायद ही कोई संदेह हो सकता था कि सुप्रीम कोर्ट के पास भी वही अधिकार क्षेत्र होगा जो इंग्लैंड के 'कोर्ट ऑफ़ किंग्स बेंच डिवीज़न' के न्यायाधीशों के पास था, उन क्षेत्रों के लिए जो उस समय मद्रास सरकार के अधीन या उस पर निर्भर थे, अथवा भविष्य में हो सकते थे। इसलिए, उस मामले में दिए गए निर्णय पर अत्यधिक ज़ोर देना उचित नहीं होगा। यह प्रश्न कि क्या अनुच्छेद 226 में 'मुकदमे का आधार' की अवधारणा को शामिल किया जा सकता है, 'साका वेंकट सुब्बा राव' के मामले (2) में भी विचाराधीन था, और उसे इन शब्दों के साथ अस्वीकृत कर दिया गया था:-

"यह नियम कि मुकदमों में 'मुकदमे का आधार' (कॉज़ ऑफ़ एक्शन) क्षेत्राधिकार को निर्धारित करता है, वैधानिक प्रावधानों पर आधारित है और अनुच्छेद 226 के तहत जारी की जाने वाली रिटों पर लागू नहीं हो सकता; क्योंकि यह अनुच्छेद किसी भी 'कॉज़ ऑफ़ एक्शन' या उसके उत्पन्न होने के स्थान का कोई उल्लेख नहीं करता, बल्कि इस बात पर ज़ोर देता है कि वह व्यक्ति या प्राधिकारी 'उन क्षेत्रों के भीतर' मौजूद हो, जिनके संबंध में उच्च न्यायालय अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग करता है।"

अनुच्छेद 226, जैसा कि यह अभी है, कहीं भी 'कॉज़ ऑफ़ एक्शन' (मुकदमे का आधार) के

(1) (1943) एल.आर. 70 आई.ए. 129 (2) [1953] एस.सी.आर. 1144

उत्पन्न होने का ज़िक्र नहीं करता, और न ही यह कहता है कि हाई कोर्ट का अधिकार क्षेत्र उस जगह पर निर्भर करेगा जहाँ 'कॉज़ ऑफ़ एक्शन' उत्पन्न हुआ है और जो उसके क्षेत्रीय अधिकार क्षेत्र के भीतर आता हो। अनुच्छेद 226 के तहत होने वाली कार्यवाही मुकदमे (suits) नहीं हैं; वे एक विशेष प्रक्रिया के माध्यम से असाधारण उपचार प्रदान करती हैं और हाई कोर्ट को व्यक्तियों तथा अधिकारियों पर सुधार करने की शक्तियाँ देती हैं, और इन विशेष शक्तियों का प्रयोग उनके लिए निर्धारित सीमाओं के भीतर ही किया जाना चाहिए। इन दो सीमाओं का संकेत हमने ऊपर पहले ही दे दिया है, और उनमें से एक यह है कि संबंधित व्यक्ति या अधिकारी उन क्षेत्रों के भीतर होना चाहिए जिन पर हाई कोर्ट अपना अधिकार क्षेत्र रखता है। तो क्या यह संभव है कि इस संवैधानिक सीमा को नज़रअंदाज़ कर दिया जाए और यह कहा जाए कि हाई कोर्ट किसी व्यक्ति या अधिकारी के खिलाफ़ रिट जारी कर सकता है, भले ही वह उसके क्षेत्रों के भीतर न हो, केवल इसलिए कि 'कॉज़ ऑफ़ एक्शन' उन क्षेत्रों के भीतर उत्पन्न हुआ है? हमें ऐसा लगता है कि यदि अनुच्छेद 226 में 'कॉज़ ऑफ़ एक्शन' की अवधारणा को शामिल किया जाता है, तो यह अनुच्छेद 226 के स्पष्ट प्रावधान के विपरीत होगा और उसमें निहित एक स्पष्ट सीमा को समाप्त करने जैसा होगा। न ही हमें यह कहना सही लगता है कि क्योंकि अनुच्छेद 300 विशेष रूप से भारत सरकार द्वारा या उसके खिलाफ़ मुकदमों का प्रावधान करता है, इसलिए अनुच्छेद 226 के तहत होने वाली कार्यवाही भी अनुच्छेद 300 के दायरे में आती है। हमें ऐसा लगता है कि अनुच्छेद 300, जो भारत सरकार अधिनियम, 1935 की धारा 176 की तर्ज पर ही है, केवल मुकदमों (suits) से संबंधित है–और ऐसी कार्यवाहियों से जो मुकदमों के समान हों या उनके परिणामस्वरूप हों–तथा इसका संविधान के अनुच्छेद 226 द्वारा प्रदान किए गए असाधारण उपचारों से कोई संबंध नहीं है। हमारी राय में, अनुच्छेद 226 में 'कॉज़ ऑफ़ एक्शन' की अवधारणा को शामिल नहीं किया जा सकता, क्योंकि ऐसा करने पर हम उसमें निहित उस स्पष्ट प्रावधान को समाप्त कर देंगे, जिसके अनुसार जिस व्यक्ति या अधिकारी के खिलाफ़ रिट जारी की जानी है, उसे उन क्षेत्रों के भीतर ही निवासी या स्थित होना चाहिए जिन पर हाई कोर्ट का अधिकार क्षेत्र है। यह सच है कि इससे नई दिल्ली से दूर रहने वाले उन लोगों को कुछ असुविधा हो सकती है, जो भारत सरकार के किसी आदेश से पीड़ित हैं; और यही अनुच्छेद 226 में उचित संवैधानिक संशोधन करने का एक कारण हो सकता है। लेकिन हमारी राय में,

असुविधा का यह तर्क अनुच्छेद 226 की स्पष्ट भाषा को प्रभावित नहीं कर सकता; न ही इसमें 'वादमूल' (कॉज़ ऑफ एक्शन) के स्थान की अवधारणा को शामिल किया जा सकता है, क्योंकि ऐसा करने से इसमें निहित उच्च न्यायालय की शक्तियों पर लगी दो सीमाएँ समाप्त हो जाएँगी।

हमने अनुच्छेद 226 की भाषा और ऊपर बताए गए इस न्यायालय के दो निर्णयों पर गंभीरता से विचार किया है। हमारी राय है कि जब तक कोई स्पष्ट और ठोस कारण न हों, जिन्हें नकारा न जा सके, तब तक हमें इन दो मामलों में दी गई व्याख्या से, और वास्तव में इस न्यायालय के किसी भी पिछले निर्णय में दी गई व्याख्या से, तब तक अलग नहीं होना चाहिए, जब तक कि इस बात पर काफी हद तक एकमत न हो कि पिछले निर्णय स्पष्ट रूप से गलत थे। इस न्यायालय को, सिवाय उस स्थिति के जब यह सभी उचित संदेहों से परे साबित हो जाए कि उसका पिछला निर्णय–जो उचित विचार-विमर्श और पूरी सुनवाई के बाद दिया गया था–गलत था, अपने पिछले निर्णय से पीछे नहीं हटना चाहिए, विशेष रूप से किसी संवैधानिक मुद्दे पर। इस मामले में, विषय पर हमारे पुनर्विचार ने इस दृष्टिकोण की पुष्टि की है कि अनुच्छेद 226 के तहत, उस स्थान की अवधारणा को शामिल करने की कोई गुंजाइश नहीं है जहाँ विवादित आदेश प्रभावी होता है; न ही सरकार के कामकाज की अवधारणा को–उस कार्यालय के स्थान के अलावा जो मामले से संबंधित है–शामिल करने की गुंजाइश है; और न ही उस स्थान की अवधारणा को शामिल करने की गुंजाइश है जहाँ 'कॉज़ ऑफ़ एक्शन' (मुकदमे का कारण) उत्पन्न होता है। साथ ही, उस अनुच्छेद की भाषा इतनी स्पष्ट है कि वह उसी निष्कर्ष पर ले जाती है जिस पर इस न्यायालय के ऊपर बताए गए दो मामले पहुँचे थे। यदि अनुच्छेद 226 की इस व्याख्या के कारण कोई असुविधा महसूस होती है, तो इसका समाधान एक संवैधानिक संशोधन प्रतीत होता है। इस असुविधा से बचने के लिए ऐसी कोई व्याख्या अपनाने की गुंजाइश नहीं है, जिसे हम अनुच्छेद की भाषा के आधार पर उचित रूप से स्वीकार नहीं कर सकते, और जिसे अनुच्छेद की भाषा समर्थन नहीं देती।

इस दृष्टिकोण से, यह अपील असफल होती है और इसे खर्च सहित खारिज किया जाता है।

सुब्बा राव, जे.- मुझे माननीय मुख्य न्यायाधीश द्वारा तैयार किए गए निर्णय को पढ़ने का अवसर मिला है। मुझे खेद है कि मैं उससे सहमत नहीं हो पा रहा हूँ। मैं उनकी इस महत्त्वपूर्ण राय से भिन्न मत रखने का साहस नहीं करता, सिवाय इस तथ्य के कि यदि प्रतिवादियों के

तर्क को स्वीकार कर लिया जाता है, तो इससे हमारे देश के अधिकांश नागरिकों को संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत केंद्र सरकार के अवैध कार्यों के विरुद्ध प्राप्त सस्ते, त्वरित और प्रभावी उपचार के लाभ से व्यावहारिक रूप से वंचित होना पड़ेगा। यदि संबंधित प्रावधान स्पष्ट और असंदिग्ध हैं, तो उक्त तर्क को ही मान्य होना चाहिए, भले ही उसका सार्वजनिक हित पर कितना भी अहितकर प्रभाव क्यों न पड़े। परंतु यदि अनुच्छेद के शब्दों की दो या अधिक व्याख्याएँ संभव हैं–जिनमें से एक संविधान सभा के आशय को पूरा करती हो और दूसरी उसे विफल करती हो–तो पहली व्याख्या को ही अनिवार्य रूप से स्वीकार किया जाना चाहिए। हमें यह भी ध्यान रखना चाहिए कि संविधान के प्रावधान "गणितीय सूत्र नहीं हैं, जिनका सार केवल उनके रूप में ही निहित हो"। चूंकि यह एक जीवंत (organic) विधान है, इसलिए इसके प्रावधानों की व्याख्या व्यापक दृष्टिकोण से की जानी चाहिए, न कि केवल शाब्दिक या संकीर्ण अर्थ में; बशर्ते कि ऐसा करते समय प्रयुक्त भाषा के मूल अर्थ या स्वरूप के साथ कोई छेड़छाड़ न की जाए।

तथ्यों का पूरा विवरण मुख्य न्यायाधीश के फ़ैसले में दिया जा चुका है, और उन्हें दोबारा दोहराना बेकार होगा। मेरे लिए इतना ही काफ़ी होगा कि मैं उठाए गए कानूनी मुद्दे को स्पष्ट करूँ और उस पर अपनी राय दूँ। सवाल यह है कि क्या अपीलकर्ता जो भारत का नागरिक है और कश्मीर राज्य में रहता है संविधान के अनुच्छेद 32(2ए) के तहत अपने मौलिक अधिकार को लागू करने के लिए जम्मू-कश्मीर उच्च न्यायालय में एक उचित रिट याचिका दायर कर सकता है, यदि केंद्र सरकार के किसी आदेश से उसके अधिकार का उल्लंघन होता है। भारत का संविधान, कुछ अपवादों और संशोधनों के साथ, 'संविधान (जम्मू-कश्मीर पर लागू) आदेश, 1954' (आदेश संख्या 48, दिनांक 14 मई, 1954) के द्वारा जम्मू-कश्मीर राज्य पर लागू किया गया है। उक्त आदेश द्वारा, संविधान के अनुच्छेद 32 के खंड (3) को हटा दिया गया था, और खंड (2) के बाद एक नया खंड (2ए) जोड़ा गया था। इस सवाल का फ़ैसला उक्त खंड (2ए) की सही व्याख्या के आधार पर किया जाना है, जो इस प्रकार है:

खंड (1) और (2) द्वारा प्रदत्त शक्तियों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, उच्च न्यायालय को उन सभी क्षेत्रों में, जिन पर उसका क्षेत्राधिकार है, किसी भी व्यक्ति या प्राधिकारी को–जिसमें उचित मामलों में इन क्षेत्रों के भीतर की कोई भी सरकार भी शामिल है–निर्देश, आदेश या रिट जारी

करने की शक्ति होगी; इन रिटों में बंदी प्रत्यक्षीकरण (habeas corpus), परमादेश (mandamus), प्रतिषेध (prohibition), अधिकार पृच्छा (quo warranto) और उत्प्रेषण (certiorari) की प्रकृति वाली रिटें, या इनमें से कोई भी रिट शामिल है, और ये रिटें इस भाग द्वारा प्रदत्त किसी भी अधिकार को लागू करवाने के लिए जारी की जाएंगी।

इस खंड का मुख्य भाग संविधान के अनुच्छेद 226 के समान ही है, बस फ़र्क इतना है कि बाद वाले अनुच्छेद में पाए जाने वाले शब्द "किसी अन्य उद्देश्य के लिए" पहले वाले में छोड़ दिए गए हैं। हालाँकि जम्मू और कश्मीर के उच्च न्यायालय की शक्ति इस हद तक सीमित है, फिर भी अन्य मामलों में यह उतनी ही व्यापक है जितनी कि अनुच्छेद 226 के तहत अन्य उच्च न्यायालयों की। इस संशोधन का उद्देश्य स्पष्ट है; इसे इसलिए बनाया गया था ताकि उक्त उच्च न्यायालय देश के उस हिस्से में भारत के नागरिकों के मौलिक अधिकारों की रक्षा कर सके।

विद्वान सॉलिसिटर-जनरल का मुख्य तर्क यह है कि इस न्यायालय ने संविधान के अनुच्छेद 226 के समान प्रावधानों की व्याख्या करते हुए यह निर्णय दिया है कि इस अनुच्छेद के तहत जारी रिट उन क्षेत्रों से बाहर लागू नहीं होतीं, जिनके संबंध में कोई उच्च न्यायालय अपना क्षेत्राधिकार प्रयोग करता है; और यह कि कोई उच्च न्यायालय इस अनुच्छेद के तहत तब तक कोई रिट जारी नहीं कर सकता, जब तक कि वह व्यक्ति या प्राधिकारी, जिसके विरुद्ध रिट की मांग की गई है, उस उच्च न्यायालय के क्षेत्रीय क्षेत्राधिकार के भीतर भौतिक रूप से निवासी या स्थित न हो। अतः, इसी तर्क के आधार पर, जम्मू-कश्मीर का उच्च न्यायालय उस राज्य के क्षेत्रों से बाहर, नई दिल्ली में अपने अधिकारियों के माध्यम से कार्य कर रही केंद्र सरकार के विरुद्ध कोई रिट जारी नहीं कर सकता।

दूसरी ओर, अपीलकर्ता के विद्वान वकील का तर्क है कि न तो अनुच्छेद 32(2ए) और न ही अनुच्छेद 226 की कोई ऐसी सीमित व्याख्या की जा सकती है; बल्कि उक्त संवैधानिक प्रावधानों की उदार और सही व्याख्या करने पर यह माना जाना चाहिए कि उच्च न्यायालय किसी भी सरकार–जिसमें केंद्र सरकार भी शामिल है–के विरुद्ध रिट जारी कर सकता है, यदि वह सरकार किसी राज्य के क्षेत्र के भीतर कार्य करते हुए उस राज्य में रहने वाले किसी व्यक्ति के अधिकारों का उल्लंघन करती है।

इससे पहले कि मैं अनुच्छेद 32 के खंड (2ए) के प्रावधानों की व्याख्या करने का प्रयास करूँ, मुझे लगता है कि अनुच्छेद 226 के इतिहास को संक्षेप में जानना उचित होगा, क्योंकि यह

अनुच्छेद 32(2ए) में व्यक्त विधायी मंशा पर भरपूर प्रकाश डालता है। स्वतंत्रता-पूर्व भारत में, बंबई, कलकत्ता और मद्रास जैसे प्रेसीडेंसी शहरों में स्थित उच्च न्यायालयों को छोड़कर, अन्य उच्च न्यायालयों के पास विशेषाधिकार रिट (prerogative writs) जारी करने की कोई शक्ति नहीं थी; यहाँ तक कि उक्त प्रेसीडेंसी उच्च न्यायालयों के मामले में भी, रिट जारी करने की शक्ति बहुत सीमित थी; उक्त रिट जारी करने का उनका क्षेत्राधिकार केवल उनके मूल क्षेत्राधिकार की सीमाओं तक ही सीमित था और सरकारों को इसके दायरे से बाहर रखा गया था। लेकिन हमारे संविधान निर्माताओं ने, सदियों की अधीनता की पृष्ठभूमि को ध्यान में रखते हुए; इंग्लैंड के उच्च न्यायालय द्वारा अपने नागरिकों के अधिकारों की रक्षा में निभाई गई महत्वपूर्ण भूमिका की जागरूकता के साथ–विशेषकर तब जब कार्यपालिका की कार्रवाई से उन अधिकारों का हनन होता था; स्वतंत्रता-पूर्व भारत में उच्च न्यायालयों द्वारा अपने सीमित क्षेत्राधिकार के भीतर, हमारे देश के नागरिकों के अधिकारों की रक्षा में निभाई गई प्रभावी और निष्पक्ष भूमिका के ज्ञान के साथ; और भविष्य में तानाशाही को सिर उठाने से रोकने की दूरदृष्टि के साथ–संविधान के भाग III में मौलिक अधिकारों की घोषणा की। उन्होंने उच्च न्यायालयों को यह शक्ति प्रदान की कि वे किसी भी व्यक्ति या प्राधिकरण को–जिसमें उचित मामलों में कोई भी सरकार भी शामिल है–मौलिक अधिकारों को लागू करने के लिए या किसी अन्य उद्देश्य के लिए निर्देश, आदेश या रिट जारी कर सकें। संक्षेप में, भारत का कोई भी व्यक्ति, यदि उसके मौलिक अधिकार या किसी अन्य अधिकार का हनन किसी व्यक्ति, प्राधिकरण या सरकार द्वारा किया जाता है, तो वह उस व्यक्ति, प्राधिकरण या सरकार के विरुद्ध अपने अधिकारों की रक्षा के लिए किसी उपयुक्त उच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटा सकता है। यदि प्रतिवादियों की दलील मान ली जाए, तो जब भी केंद्र सरकार देश के किसी भी सुदूर हिस्से में किसी व्यक्ति के अधिकार का हनन करती है, तो उस व्यक्ति को अपने अधिकार को लागू करवाने के लिए, पंजाब उच्च न्यायालय की सर्किट बेंच में रिट याचिका दायर करने हेतु, इतनी लंबी यात्रा करके नई दिल्ली आना पड़ेगा। अगर भारत के सबसे दक्षिणी हिस्से, कन्याकुमारी में रहने वाले किसी आम आदमी को, केंद्र सरकार के किसी आदेश के तहत, गैर-कानूनी रूप से जेल में डाल दिया जाता है, या कानून के अलावा किसी और तरीके से उसकी संपत्ति से वंचित कर दिया जाता है, तो उससे यह उम्मीद करना कि वह पंजाब के हाई कोर्ट से सुरक्षा पाने के लिए नई दिल्ली आए, मौलिक अधिकारों का मज़ाक उड़ाने जैसा होगा। अनुच्छेद 226 के प्रावधानों की इस तरह की व्याख्या

से संविधान बनाने वालों के इरादों पर यह सवाल उठेगा कि उन्होंने किसी व्यक्ति को अधिकार तो दिया, लेकिन व्यावहारिक रूप से केंद्र सरकार के खिलाफ अपने अधिकार को लागू करने का उपाय उससे छीन लिया। ज़ाहिर है, संविधान सभा का इरादा ऐसा कोई अजीब नतीजा निकालना नहीं रहा होगा, खासकर उस अधिकार के मामले में जिसे वे इस देश के नागरिकों को दिया गया एक अनमोल अधिकार मानते थे। ऐसी स्थिति में, दिया गया अधिकार बेमानी साबित होता है और संविधान बनाने वालों का उद्देश्य पूरी तरह से विफल हो जाता है।

अनुच्छेद 226 का दायरा, और उसके मुकाबले हाई कोर्ट की शक्तियों की पहुँच–इन दोनों बातों पर इस कोर्ट के दो फ़ैसलों में विचार किया गया है: पहला, इलेक्शन कमीशन, इंडिया बनाम साका वेंकटा राव (1) और के. एस. राशिद एंड सन बनाम द इनकम-टैक्स इन्वेस्टिगेशन कमीशन (2)। चूँकि सात जजों की यह बेंच इसलिए बनाई गई है ताकि यह कोर्ट इस समस्या पर एक नए नज़रिए से विचार कर सके–बिना किसी पुरानी मिसाल की रोक-टोक के–इसलिए मेरा प्रस्ताव है कि मैं अनुच्छेद 32(2ए) के प्रावधानों की जाँच-पड़ताल, पिछले फ़ैसलों द्वारा लगाई गई पाबंदियों से पूरी तरह मुक्त होकर करूँ।

इस अनुच्छेद का मूल भाव निम्नलिखित खंडों और वाक्यांशों में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है: "उन सभी क्षेत्रों में, जिनके संबंध में वह अपना क्षेत्राधिकार प्रयोग करता है", "कोई भी सरकार", "उन क्षेत्रों के भीतर", "निर्देश या आदेश या रिट, जिनमें बंदी प्रत्यक्षीकरण प्रकृति वाली रिट भी शामिल हैं, आदि।" "सभी क्षेत्रों में, आदि" शब्द, निर्देश या रिट जारी करने के मामले में उच्च न्यायालयों के क्षेत्रीय क्षेत्राधिकार की सीमा निर्धारित करते हैं। एक उच्च न्यायालय उस पूरे राज्य में अपना क्षेत्राधिकार प्रयोग करता है, जिसमें वह स्थित है। उसकी रिट केवल उस राज्य के भीतर ही प्रभावी होती हैं, न कि उसकी क्षेत्रीय सीमाओं के बाहर। इस शक्ति का मुख्य उद्देश्य अधिकारियों या अधिकरणों को उनकी सीमाओं के भीतर रखना और उन्हें नागरिकों के मौलिक या अन्य अधिकारों का उल्लंघन करने से रोकना है। किसी पीड़ित व्यक्ति के अनुरोध पर, वह किसी दोषी अधिकारी के विरुद्ध–उसके द्वारा किए गए किसी कार्य या न किए गए किसी कार्य के संबंध में कोई रिट, आदेश या निर्देश जारी कर सकता है। इस सीमा में यह बात अंतर्निहित है कि जिस कार्य को चुनौती दी गई है, वह किसी ऐसे व्यक्ति या संपत्ति को प्रभावित करने वाला होना चाहिए, जो उस न्यायालय के क्षेत्रीय क्षेत्राधिकार के अधीन आते हों।

(1) [1953] एस.सी.आर. 1144 (2) (1954] एस.सी.आर. 738

यह सवाल, एक अलग संदर्भ में, प्रिवी काउंसिल की ज्यूडिशियल कमेटी द्वारा रैयत गारबंदलव बनाम जमींदार पार्लाकिमेडी ([1]) मामले में विचाराधीन रहा है। वहाँ, मद्रास राज्य में स्थित राजस्व बोर्ड ने, *मद्रास एस्टेट्स लैंड एक्ट, 1908* की धारा 172 के तहत, उत्तरी सिरकार्स के गंजम जिले के तीन गाँवों–जिनमें पार्लाकिमेडी गाँव भी शामिल था–के रैयतों द्वारा देय लगान में वृद्धि कर दी थी। सवाल यह था कि क्या मद्रास हाई कोर्ट के पास राजस्व बोर्ड के आदेश को रद्द करने के लिए रिट जारी करने की शक्ति थी, क्योंकि उस मुकदमे के पक्षकार मद्रास हाई कोर्ट के मूल क्षेत्राधिकार के अधीन नहीं थे। ज्यूडिशियल कमेटी ने यह निर्णय दिया कि मद्रास हाई कोर्ट के पास उत्प्रेषण (certiorari) की ऐसी रिट जारी करने का कोई क्षेत्राधिकार नहीं था, जो उस हाई कोर्ट की क्षेत्रीय सीमाओं से बाहर प्रभावी हो। जब यह तर्क दिया गया कि, चूंकि राजस्व बोर्ड मद्रास में स्थित था, इसलिए हाई कोर्ट के पास उसके आदेश को रद्द करने का क्षेत्राधिकार था, तो ज्यूडिशियल कमेटी ने पृष्ठ 164 पर निम्नलिखित टिप्पणियों के साथ उस तर्क को अस्वीकार कर दिया:

"बोर्ड ऑफ़ रेवेन्यू के दफ़्तर हमेशा प्रेसिडेंसी टाउन में रहे हैं, और इस मामले में, कलेक्टिव बोर्ड ने, जिसके आदेश की शिकायत की गई है, वह आदेश इसी टाउन में जारी किया था। दूसरी ओर, पक्षकार हाई कोर्ट के मूल क्षेत्राधिकार के अधीन नहीं हैं, और परलाकिमेडी की रियासत प्रांत के उत्तरी हिस्से में स्थित है..... उनके लॉर्डशिप का मानना है कि क्षेत्राधिकार के सवाल को एक महत्वपूर्ण मुद्दा माना जाना चाहिए, और सुप्रीम कोर्ट के लिए यह उसकी अधिकार-सीमा के भीतर नहीं होता कि वह बोर्ड ऑफ़ रेवेन्यू के टाउन में स्थित होने के आधार पर, उसे 'सर्टिओरारी' (certiorari) जारी करके, इस तरह के मामले पर अपना क्षेत्राधिकार जताए। इस तरह का नज़रिया सुप्रीम कोर्ट को गंजम में 'रैयती-होल्डिंग्स' (किसानों की ज़मीनों) के किराए तय करने के मामले में क्षेत्राधिकार दे देगा–उन पक्षकारों के बीच, जो अन्यथा उसके क्षेत्राधिकार के अधीन नहीं हैं–जबकि वह क्षेत्राधिकार उसे उस रेवेन्यू अधिकारी पर भी हासिल नहीं होता, जिसने पहली बार इस मामले को निपटाया था।"

यह फ़ैसला साफ़ शब्दों में मामले के मूल तत्व पर ज़ोर देता है और यह मानता है कि किसी अथॉरिटी की किसी हाई कोर्ट के अधिकार क्षेत्र में महज़ भौतिक मौजूदगी, उस कोर्ट को यह अधिकार नहीं देती कि वह उस अथॉरिटी के ख़िलाफ़, ऐसे लोगों के बीच किसी विवाद में दिए

([1]) (1943) एल.आर. 70 आई.ए. 129

गए आदेश के संबंध में रिट जारी करे, जो उस हाई कोर्ट के क्षेत्रीय अधिकार क्षेत्र के बाहर रहते हैं। इसलिए, किसी हाई कोर्ट का उचित रिट जारी करने का अधिकार क्षेत्र दो शर्तों के एक साथ पूरा होने पर निर्भर करता है, वे हैं: **(i)** वादमूल (cause of action) उन क्षेत्रों के भीतर उत्पन्न हुआ हो जिनके संबंध में उसका अधिकार क्षेत्र है, और **(ii)** वह अथॉरिटी उन क्षेत्रों के "भीतर" स्थित हो। इस व्याख्या की आलोचना हो सकती है; यह पूछा जा सकता है कि यदि कार्रवाई का कारण एक हाई कोर्ट के क्षेत्रीय अधिकार क्षेत्र के भीतर उत्पन्न होता है और संबंधित अथॉरिटी दूसरे हाई कोर्ट के अधिकार क्षेत्र में स्थित है, तो कौन सा हाई कोर्ट राहत दे सकता है? ऐसी वैधानिक अथॉरिटीज़ हो सकती हैं जिनका अधिकार क्षेत्र पूरे भारत में हो, लेकिन सुविधा के लिए वे किसी विशेष राज्य में स्थित हों। क़ानूनों के तहत मिली शक्तियों का प्रयोग करते हुए, वे ऐसे आदेश जारी कर सकती हैं जो अलग-अलग राज्यों में रहने वाले पक्षों के अधिकारों को प्रभावित करते हों। मेरी प्रथम दृष्टया राय यह है कि वे अथॉरिटीज़, जहाँ तक उनके आदेश किसी विशेष क्षेत्र में प्रभावी होते हैं, उन क्षेत्रों के "भीतर" मानी जाएँगी, और वह हाई कोर्ट, जो उस पूरे क्षेत्र में अपना अधिकार क्षेत्र रखता है, उन अथॉरिटीज़ के ख़िलाफ़ उचित रिट जारी कर सकता है। यह व्याख्या उस विसंगति से बचाती है जिसमें एक हाई कोर्ट, अपने क्षेत्रीय अधिकार क्षेत्र के "भीतर" स्थित किसी अथॉरिटी के ख़िलाफ़, किसी ऐसे दूसरे राज्य या क्षेत्र में उत्पन्न कार्रवाई के कारण के संबंध में रिट जारी करता है, जिस पर उसका कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है। लेकिन इस मामले में यह सवाल नहीं उठता, क्योंकि हम मुख्य रूप से केंद्र सरकार से संबंधित हैं।

संविधान का अनुच्छेद 226 व्यापक और अत्यंत विस्तृत शब्दों में व्यक्त किया गया है। "व्यक्ति या प्राधिकारी" शब्दों को लेकर कोई कठिनाई नहीं है, लेकिन "जिसमें कोई भी सरकार शामिल है" वाक्यांश से विचारों में मतभेद पैदा होता है। यदि संविधान निर्माताओं का इरादा केवल राज्य सरकार के विरुद्ध रिट जारी करने की उच्च न्यायालय की शक्ति का विस्तार करना होता, तो वे "या राज्य सरकार" कह सकते थे; इसके बजाय, उन्होंने जान-बूझकर "कोई भी सरकार" शब्दों का प्रयोग किया, जो पहली नज़र में कुछ उलझे हुए प्रतीत होते हैं, लेकिन गहन जाँच करने पर यह पता चलता है कि "कोई भी सरकार" शब्दों का अर्थ केवल राज्य सरकार नहीं हो सकता। "कोई भी" शब्द स्पष्ट रूप से यह मानकर चलता है कि किसी राज्य में एक से अधिक सरकारें कार्यरत हैं। संविधान के अंतर्गत, प्रत्येक राज्य में दो सरकारें कार्य करती हैं।

अनुच्छेद 1 के अनुसार, भारत राज्यों का एक संघ होगा और भारत के राज्यक्षेत्र में, अन्य बातों के साथ-साथ, राज्यों के राज्यक्षेत्र शामिल होंगे। भाग ॥ नागरिकों के एक ही वर्ग का प्रावधान करता है, अर्थात्, भारत के नागरिक। कोई भी व्यक्ति, जिसके पास नागरिक होने की आवश्यक योग्यताएँ हैं, चाहे वह किसी भी राज्य में निवास करता हो, वह भारत का नागरिक है, न कि उस विशेष राज्य का। संघ और राज्य, दोनों के तीनों विभाग राज्य में ही कार्य करते हैं; संसद और राज्य विधानमंडल, दोनों ही ऐसे कानून बनाते हैं जो उन्हें क्रमशः सौंपे गए विषयों के संबंध में राज्य का शासन चलाते हैं। संघ और राज्य, दोनों की कार्यपालिका शक्तियाँ राज्य तक विस्तृत हैं; संघ की शक्ति उन विषयों के संबंध में प्रयोग की जाती है जिन पर संसद को कानून बनाने की शक्ति प्राप्त है, और राज्य की शक्ति उन विषयों के संबंध में प्रयोग की जाती है जिन पर राज्य विधानमंडल को कानून बनाने की शक्ति प्राप्त है (देखें अनुच्छेद 73 और 162)। न्यायपालिका में न्यायालयों की एक पदानुक्रमित व्यवस्था होती है, और सबसे निचले स्तर से लेकर उच्चतम न्यायालय तक के सभी न्यायालय, उस राज्य में उत्पन्न होने वाले किसी भी वादमूल (cause of action) के संबंध में क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हैं। इसलिए, संघ सरकार और राज्य सरकार के बीच का सीमांकन क्षेत्रीय आधार पर नहीं, बल्कि केवल विषय-वस्तु के आधार पर है, और दोनों ही सरकारें राज्य के भीतर ही कार्य करती हैं। इस पृष्ठभूमि को देखते हुए, यह समझना आसान है कि "कोई भी सरकार" में संघ सरकार भी अवश्य शामिल होनी चाहिए; क्योंकि दो राज्य सरकारें मिलकर एक ही राज्य का प्रशासन नहीं चला सकतीं, यद्यपि सुविधा के लिए या किसी अस्थायी व्यवस्था के रूप में, एक राज्य के कार्यालय दूसरे राज्य में स्थित हो सकते हैं। तब यह प्रश्न उठता है कि यह अनुच्छेद किसी भी सरकार के विरुद्ध रिट जारी करने की शक्ति केवल "उपयुक्त मामलों" में ही क्यों प्रदान करता है? इस प्रश्न के दो उत्तर हैं। जब तक संविधान का निर्माण नहीं हुआ था... हाई कोर्ट के पास प्रांतीय सरकार के खिलाफ भी रिट जारी करने की कोई शक्ति नहीं थी। संविधान ने पहली बार हाई कोर्ट को न केवल राज्य सरकार के खिलाफ, बल्कि केंद्र सरकार के खिलाफ भी रिट जारी करने की शक्ति प्रदान की। चूँकि केंद्र सरकार का प्रभाव न केवल संबंधित राज्य पर, बल्कि उससे बाहर भी है, इसलिए यह चेतावनी देना आवश्यक हो गया कि रिट केवल उचित मामलों में ही जारी की जा सकती है। केंद्र सरकार के विरुद्ध रिट जारी करने के मामले में उच्च न्यायालय का क्षेत्राधिकार

सीमित होता है, क्योंकि वह अपने क्षेत्रीय क्षेत्राधिकार से बाहर उत्पन्न किसी 'कॉज़ ऑफ़ एक्शन' (मुकदमे के आधार) के संबंध में उसके विरुद्ध रिट जारी नहीं कर सकता। ऐसा भी कोई मामला हो सकता है जहाँ किसी राज्य सरकार का सचिवालय अस्थायी रूप से किसी अन्य राज्य में स्थित हो। ऐसे मामले में भी, बाद वाले राज्य का उच्च न्यायालय उस राज्य सरकार के विरुद्ध रिट जारी नहीं कर सकता; ऐसा इसलिए है क्योंकि ऐसी रिट जारी करना उचित नहीं माना जाता, क्योंकि 'कॉज़ ऑफ़ एक्शन' तो पहले वाले राज्य के भीतर ही उत्पन्न होता है।

अतः, मुझे इसमें कोई संदेह नहीं है कि "कोई भी सरकार" शब्दों में अनिवार्य रूप से संघ सरकार भी शामिल होगी।

इस तर्क का ज़्यादातर हिस्सा "उन क्षेत्रों के भीतर" शब्दों पर टिका है। यह कहा जाता है कि केंद्र सरकार राज्य के क्षेत्रों के भीतर नहीं है, क्योंकि इसका मुख्यालय दिल्ली में है। अनुच्छेद में "मुख्यालय", "निवासी" या "स्थान" शब्द का इस्तेमाल नहीं किया गया है। "भीतर" शब्द का शब्दकोश के अनुसार अर्थ है "अंदर, बाहर नहीं या परे नहीं"। शब्दों का अर्थ उस संदर्भ से तय होता है जिसमें उनका इस्तेमाल किया जाता है। किसी व्यक्ति को किसी क्षेत्र के भीतर तब कहा जा सकता है, जब वह वहाँ रहता हो। वह किसी क्षेत्र के भीतर तब भी हो सकता है, जब वह अस्थायी रूप से उस क्षेत्र में प्रवेश करता हो या उस क्षेत्र से गुज़र रहा हो। कोई भी प्राधिकरण किसी क्षेत्र में तब हो सकता है, जब उसका कार्यालय वहाँ स्थित हो। उसे किसी क्षेत्र के भीतर तब भी कहा जा सकता है, जब वह वहाँ अपनी शक्तियों का इस्तेमाल करता हो और यदि वह वहाँ के लोगों या संपत्तियों को बाध्य करने वाले आदेश जारी कर सकता हो। इसी तरह, कोई सरकार किसी राज्य के भीतर तब हो सकती है, जब उस राज्य में उसका कोई कानूनी स्थान हो। उसे किसी राज्य के भीतर तब भी कहा जा सकता है, जब वह उस राज्य का प्रशासन चलाती हो, भले ही सुविधा के लिए उसके कुछ कार्यकारी अधिकारी उस क्षेत्र के बाहर रहते हों। हमें इन शब्दों का ऐसा अर्थ निकालना चाहिए, जो संविधान के कामकाज में मदद करे, न कि उसमें बाधा डाले। दूसरे शब्दों में कहें तो, क्या यह कहा जा सकता है कि केंद्र सरकार किसी खास राज्य के भीतर है? मौजूदा संदर्भ में केंद्र सरकार का मतलब सरकार की कार्यकारी शाखा

से है। यह कहाँ स्थित है? इस सवाल का जवाब देने के लिए यह विचार करना ज़रूरी है कि "केंद्र सरकार" क्या है। संविधान के भाग V में "संघ" शीर्षक के तहत अलग-अलग विषयों, जैसे कि कार्यपालिका, संसद और संघ न्यायपालिका के बारे में बताया गया है। अनुच्छेद 53 के तहत, संघ की कार्यकारी शक्ति राष्ट्रपति में निहित होगी और वह संविधान के अनुसार या तो सीधे तौर पर या अपने अधीनस्थ अधिकारियों के माध्यम से इसका इस्तेमाल करेगा। अनुच्छेद 74 में राष्ट्रपति को उसके कार्यों के इस्तेमाल में सहायता और सलाह देने के लिए प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में एक मंत्रिपरिषद का प्रावधान किया गया है। अनुच्छेद 77 के तहत, भारत सरकार की सभी कार्यकारी कार्रवाइयाँ राष्ट्रपति के नाम पर की गई मानी जाएँगी; और इसके खंड (3) के तहत राष्ट्रपति को भारत सरकार के कामकाज को ज़्यादा आसानी से चलाने के लिए और मंत्रियों के बीच उस कामकाज के बँटवारे के लिए नियम बनाने का अधिकार दिया गया है। अनुच्छेद 73 कहता है कि संविधान के प्रावधानों के अधीन रहते हुए, संघ की कार्यपालिका शक्ति उन मामलों तक विस्तृत होगी जिनके संबंध में संसद को कानून बनाने की शक्ति प्राप्त है, और साथ ही उन अधिकारों, प्राधिकारों और क्षेत्राधिकारों के प्रयोग तक भी, जिनका प्रयोग भारत सरकार किसी संधि या समझौते के आधार पर कर सकती है। संविधान में कहीं भी संघ सरकार या यहाँ तक कि राष्ट्रपति के भी स्थान (सीट) को निर्धारित नहीं किया गया है। संक्षेप में कहें तो, संघ सरकार का तात्पर्य राष्ट्रपति से है, जो संविधान के अनुसार, मंत्रियों की सलाह पर—चाहे सीधे तौर पर या अपने अधीनस्थ अधिकारियों के माध्यम से—कार्य करते हैं; और उक्त सरकार का क्षेत्राधिकार—जहाँ तक वर्तमान उद्देश्य के लिए प्रासंगिक है—उन मामलों तक विस्तृत है जिनके संबंध में संसद को कानून बनाने की शक्ति प्राप्त है। जो सवाल तुरंत उठता है, वह यह है कि ऐसी सरकार का 'स्थान' (situs) क्या है? इसका कोई वैधानिक स्थान तय नहीं है। प्रशासन की सुविधा के लिए, ऐसी सरकार के अधिकारी एक ही जगह रह सकते हैं, या वे अलग-अलग जगहों पर बँटे हो सकते हैं; राष्ट्रपति एक जगह रह सकते हैं, प्रधानमंत्री दूसरी जगह, मंत्री तीसरी जगह, और जिन अधिकारियों के ज़रिए राष्ट्रपति अपनी शक्तियों का इस्तेमाल करते हैं, वे बाकी सबसे अलग किसी जगह रह सकते हैं। क्या होता है जब सचिवालय नई दिल्ली में

रहता है और राष्ट्रपति साल के कुछ महीने, मान लीजिए, हैदराबाद में रहते हैं? इसके विपरीत, स्थिति क्या होगी अगर राष्ट्रपति नई दिल्ली में रहें और पूरा या कुछ सचिवालय, या कुछ मंत्री हैदराबाद में रहें? इसलिए, किसी वैधानिक स्थान के अभाव में, निवास या स्थान के आधार पर जाँच करना संभव नहीं है। केंद्र सरकार का कोई तय कानूनी ठिकाना नहीं है; यह उन सभी क्षेत्रों में मौजूद है जिन पर इसका अधिकार क्षेत्र है, और जिनके संबंध में यह संविधान द्वारा इसे सौंपे गए क्षेत्र में प्रभावी और बाध्यकारी आदेश जारी कर सकती है। केंद्र सरकार का संवैधानिक स्थान पूरे संघ का क्षेत्र है, और यह भारत के क्षेत्रों के "अंदर" है, और इसलिए, हर राज्य के क्षेत्र के अंदर है।

इस प्रॉब्लम को दूसरे नज़रिए से देखें। संविधान के आर्टिकल 300 के तहत, भारत सरकार यूनियन ऑफ़ इंडिया के नाम से केस कर सकती है या उस पर केस किया जा सकता है। "केस किया गया" शब्द का इस्तेमाल आम मतलब में किया जाता है और संविधान में इसका मतलब सिर्फ़ सिविल कोर्ट में केस करने जैसा नहीं समझा जा सकता। वेबस्टर के अनुसार, इसका मतलब कानूनी प्रोसेस से न्याय या अधिकार पाना है। आम तौर पर, इसमें कोर्ट में की गई कोई भी कार्रवाई शामिल है। अलग-अलग हाई कोर्ट और सुप्रीम कोर्ट में अपनाई जाने वाली प्रैक्टिस भी इसके बड़े मतलब के हिसाब से है, क्योंकि भारत सरकार के खिलाफ रिट सिर्फ़ यूनियन ऑफ़ इंडिया के नाम पर ही फाइल की जाती हैं। यूनियन ऑफ़ इंडिया एक कानूनी व्यक्ति है और यह बताना नामुमकिन है कि यह यूनियन में किसी खास जगह पर रहता है। इसकी मौजूदगी केंद्र शासित प्रदेश की सीमाओं के साथ सिंक्रोनाइज़ होती है। यही वजह है कि सिविल प्रोसीजर कोड के ऑर्डर XXVII, रूल 3 में कहा गया है कि सरकार की तरफ से या उसके खिलाफ दायर केस में, शिकायत में वादी या उत्तरदाता का नाम, जानकारी और रहने की जगह डालने के बजाय, सेक्शन 79 में दिए गए सही नाम

डालना काफी होगा। सिविल प्रोसीजर कोड का सेक्शन 79, संविधान के आर्टिकल 300 जैसा है, और उस सेक्शन के तहत,

सरकार द्वारा या उसके विरुद्ध किसी वाद में, वादी या उत्तरदाता के रूप में नामित की जाने वाली प्राधिकारी, यथास्थिति, यह होगी–

(ए) केंद्र सरकार द्वारा या उसके विरुद्ध किसी वाद की दशा में, भारत संघ, और
(बी) किसी राज्य सरकार द्वारा या उसके विरुद्ध किसी वाद की दशा में, वह राज्य।"

चूँकि भारतीय संघ का कोई सांविधिक स्थान (situs) नहीं है, इसलिए 'दीवानी प्रक्रिया संहिता' (Code of Civil Procedure) का आदेश XXVII, नियम 3, वादी-पत्र या लिखित बयान में, जैसा भी मामला हो–उसके निवास स्थान का विवरण देने से छूट देता है। भारत सरकार द्वारा या उसके विरुद्ध मुकदमा ऐसे न्यायालय में दायर किया जाएगा, जिसके पास उक्त संहिता की धारा 15 से 20 के प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए, ऐसे मुकदमे की सुनवाई करने का क्षेत्राधिकार हो। इसी तर्क के आधार पर, यह माना जा सकता है कि भारत संघ का किसी विशेष स्थान पर कोई कानूनी स्थान (situs) नहीं है, और इसके विरुद्ध उस उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार के अंतर्गत आने वाले किसी भी स्थान पर रिट याचिका दायर की जा सकती है, जहाँ वादमूल (कॉज़ ऑफ एक्शन) उत्पन्न होता है।

कहा जाता है कि रिट जारी करने की शक्ति की सीमाएँ किसी विशेष रिट की प्रकृति में ही निहित होती हैं। मुख्य रिटों–अर्थात्, बंदी प्रत्यक्षीकरण (habeas corpus), परमादेश (mandamus), प्रतिषेध (prohibition), अधिकार पृच्छा (quo warranto) और उत्प्रेषण (certiorari)—की प्रकृति क्या है? बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट "विषय की स्वतंत्रता को सुरक्षित करने के लिए एक विशेषाधिकार प्रक्रिया है, जो उसे गैर-कानूनी या अनुचित हिरासत–चाहे वह जेल में हो या निजी हिरासत में–से तत्काल रिहाई का एक प्रभावी साधन प्रदान करती है।" परमादेश की रिट "रूप में, किसी भी व्यक्ति, निगम या अधीनस्थ न्यायाधिकरण को निर्देशित एक आदेश है, जिसमें उससे या उनसे कोई विशेष कार्य करने की अपेक्षा की जाती है, जो उसमें निर्दिष्ट हो, उनके पद से संबंधित हो और सार्वजनिक कर्तव्य की प्रकृति का हो।" प्रतिषेध का आदेश एक ऐसा आदेश है जो किसी अधीनस्थ न्यायाधिकरण को निर्देशित होता है, और उसे उसमें लंबित कार्यवाही को जारी रखने से रोकता है। अधिकार पृच्छा की प्रकृति वाली जानकारी (information) उस व्यक्ति के विरुद्ध दायर की जाती है जिसने किसी पद, विशेषाधिकार या स्वतंत्रता का दावा किया हो

या उसे हड़प लिया हो, ताकि यह जाँच की जा सके कि वह किस अधिकार के तहत अपने दावे का समर्थन करता है। उत्प्रेषण की रिट किसी प्राधिकारी को निर्देशित होती है, "जिसमें किसी मामले या विषय की कार्यवाही के अभिलेख को उच्च न्यायालय में भेजने की अपेक्षा की जाती है, ताकि वहाँ उस पर कार्यवाही की जा सके।" (देखें: हैल्सबरीज़ लॉज़ ऑफ़ इंग्लैंड, खंड ॥, तीसरा संस्करण)।

यह सवाल उठाया गया कि किसी नागरिक की स्वतंत्रता को कैसे सुरक्षित किया जा सकता है, कोई आदेश कैसे जारी किया जा सकता है, किसी जाँच की कार्यवाही पर रोक कैसे लगाई जा सकती है, किसी व्यक्ति के पद धारण करने की योग्यता पर सवाल कैसे उठाया जा सकता है, या किसी कार्यवाही के रिकॉर्ड को हाई कोर्ट भेजने का निर्देश कैसे दिया जा सकता है–यदि संबंधित अधिकारी या वह व्यक्ति जिसे निर्देश दिया गया है, हाई कोर्ट के क्षेत्रीय अधिकार क्षेत्र से बाहर स्थित हो या रहता हो? यह सवाल भी पूछा गया कि यदि उक्त अधिकारी या व्यक्ति हाई कोर्ट के आदेश का पालन न करे, तो उस आदेश को उक्त अधिकारी या व्यक्ति के विरुद्ध कैसे लागू किया जा सकता है। इसी तर्क के आधार पर यह दलील दी गई कि, चूंकि भारत सरकार की ओर से कार्य करने वाले अधिकारी दिल्ली में रहते हैं, इसलिए हाई कोर्ट द्वारा ऐसी कोई रिट जारी नहीं की जा सकती, जो अंततः निष्प्रभावी (brutum fulmen) सिद्ध हो।

इस तरह पूछे गए सवाल संविधान के संबंधित प्रावधानों को गलत समझने पर आधारित हैं। वे रिट की प्रकृति को, रिट से निपटने या उनमें दिए गए आदेशों को लागू करने की प्रक्रिया के साथ भी मिला देते हैं। जैसा कि मैंने पहले ही बताया है, यह अनुच्छेद हाई कोर्ट को केंद्र सरकार के खिलाफ रिट जारी करने की शक्ति देता है। यदि उक्त सरकार "राज्य के भीतर" है, तो क्या इसका यह जवाब देना सही है कि सरकार का कोई अधिकारी, जो किसी खास कागज़ या कागज़ों से निपट रहा है, हाई कोर्ट के क्षेत्रीय अधिकार क्षेत्र से बाहर रह रहा है? यदि केंद्र सरकार हाई कोर्ट के आदेश से बंधी है, तो सरकार की ओर से काम कर रहे किसी खास अधिकारी को नोटिस देने या उसके खिलाफ आदेश लागू करने का सवाल प्रक्रिया के दायरे से जुड़ा मामला है, और हाई कोर्ट द्वारा उचित नियम बनाए जा सकते हैं या संसद द्वारा आवश्यक कानून बनाया जा सकता है। यदि केंद्र सरकार आदेश का पालन नहीं करती है, तो वह निश्चित रूप से 'अदालत की अवमानना अधिनियम, 1952' के तहत अदालत की अवमानना के लिए उत्तरदायी होगी। भले ही अवमानना करने वाला व्यक्ति उक्त सरकार का कोई ऐसा अधिकारी हो जो हाई कोर्ट की क्षेत्रीय सीमाओं से बाहर रहता हो, फिर भी हाई कोर्ट के पास उक्त अधिनियम की धारा 5 के तहत उस तक पहुँचने की पर्याप्त शक्ति है।

अंग्रेज़ी कानून से लिया गया उदाहरण काफ़ी भ्रामक है। इंग्लैंड तुलनात्मक रूप से एक छोटा देश है और वहाँ पूरे राज्य में केवल एक ही सरकार काम करती है। जो समस्या अब सामने आई है, वह इंग्लैंड में पैदा नहीं हो सकती थी, क्योंकि हाई कोर्ट के 'क्वीन्स बेंच डिवीज़न' का अधिकार क्षेत्र पूरे इंग्लैंड में फैला हुआ है। इंग्लैंड में, इस अधिकार क्षेत्र के इस्तेमाल का तरीका भी एक ऐसी प्रक्रिया से नियंत्रित होता था जो तकनीकी बारीकियों से भरी थी, लेकिन बाद में इसे कानून बनाकर आसान बना दिया गया। इसलिए, हमारे संविधान बनाने वालों ने जान-बूझकर "की प्रकृति का" (in the nature of) शब्दों का इस्तेमाल किया; इसका मतलब यह था कि वे इंग्लैंड में अपनाई जाने वाली पूरी प्रक्रिया को संविधान में शामिल नहीं कर रहे थे, क्योंकि हमारे देश की संघीय शासन व्यवस्था को ध्यान में रखते हुए इस प्रक्रिया को विकसित करना होगा। इंग्लैंड के प्रक्रियात्मक कानून को, जो 'रिट' (writs) से जुड़ा है, हूबहू उठाकर भारत में कैसे लागू किया जा सकता है? इस कोर्ट को इन शब्दों का उचित अर्थ निकालना होगा; ऐसा करते समय उसे इन 'रिट' के ऐतिहासिक संदर्भ से बहुत ज़्यादा प्रभावित नहीं होना चाहिए। साथ ही, यदि कानूनी रूप से संभव हो, तो इस अनुच्छेद की व्याख्या इस तरह से की जानी चाहिए जिससे संविधान बनाने वालों का मूल उद्देश्य पूरा हो सके। इसके अलावा, संविधान का अनुच्छेद 226 केवल उन 'विशेषाधिकार रिट' (prerogative writs) तक ही सीमित नहीं है जो इंग्लैंड में प्रचलित हैं। यह अनुच्छेद संबंधित हाई कोर्ट को निर्देश या आदेश जारी करने का अधिकार भी देता है; ऐसे में कोई कारण नहीं है कि हाई कोर्ट किसी उचित मामले में केंद्र सरकार को कोई उपयुक्त निर्देश न दे सके, या उसके संबंध में कोई उचित आदेश जारी न कर सके। ऐसे निर्देश या आदेश निश्चित रूप से उन 'रिट' से जुड़ी प्रक्रियात्मक तकनीकी बारीकियों से मुक्त होते हैं।

अब मैं संक्षेप में उन फ़ैसलों का ज़िक्र करूँगा जिनका हवाला बार में दिया गया। पहला फ़ैसला इस अदालत का है, जो इलेक्शन कमीशन, इंडिया बनाम साका वेंकटा राव (1) मामले में आया था। उस मामले में, मद्रास के गवर्नर ने इलेक्शन कमीशन (जिसका दफ़्तर हमेशा के लिए नई दिल्ली में था) से यह सवाल पूछा था कि क्या उत्तरदाता अयोग्य है और क्या उसे विधानसभा में बैठने और वोट देने की इजाज़त दी जा सकती है। इसके बाद, उत्तरदाता ने संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत मद्रास उच्च न्यायालय में एक रिट याचिका दायर की, जिसमें इलेक्शन कमीशन को विधानसभा की सदस्यता के लिए उसकी कथित अयोग्यता की जाँच करने से रोकने की माँग की गई थी। इस अदालत ने फ़ैसला दिया कि संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत रिट

(1) [1953] एस.सी.आर. 1144

जारी करने की उच्च न्यायालय की शक्ति दोहरी सीमाओं के अधीन है: **(i)** ऐसी रिटें उन इलाकों से बाहर जारी नहीं की जा सकतीं जो उसके अधिकार क्षेत्र में आते हैं; और **(ii)** जिस व्यक्ति या संस्था को उच्च न्यायालय रिट जारी करने के लिए अधिकृत है, उसे उच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र के अधीन होना चाहिए, चाहे वह उस इलाके में रहता हो या उसका दफ़्तर वहीं स्थित हो। इसी आधार पर रिट याचिका खारिज कर दी गई थी। शुरू में ही यह बात ध्यान देने लायक है कि उस मामले और इस मौजूदा मामले के बीच एक साफ़ फ़र्क है। उस मामले में उत्तरदाता भारतीय संघ (Union of India) नहीं थी, बल्कि एक ऐसी संस्था थी जिसका दफ़्तर मद्रास राज्य के बाहर किसी जगह पर स्थित हो सकता था और था भी। मौजूदा मामला दोनों शर्तों को पूरा करता है: रिट उच्च न्यायालय के क्षेत्रीय अधिकार क्षेत्र से बाहर नहीं जाती, क्योंकि भारत सरकार को उन इलाकों के "अंदर" ही माना जाना चाहिए; दूसरी शर्त भी पूरी होती है, क्योंकि भारत सरकार राज्य के भीतर होने के कारण उसके अधिकार क्षेत्र के अधीन भी है।

माननीय सॉलिसिटर जनरल ने जिस अगले मामले का हवाला दिया है, वह इसके ठीक विपरीत है। यह इस न्यायालय का निर्णय है, जो के.एस. राशिद एंड सन बनाम द इनकम-टैक्स इन्वेस्टिगेशन कमीशन (1)' मामले में दिया गया था। उस मामले में, दिल्ली स्थित इनकम-टैक्स इन्वेस्टिगेशन कमीशन, आय पर कराधान (इन्वेस्टिगेशन कमीशन) अधिनियम, 1947' की धारा 5 के तहत याचिकाकर्ताओं के मामले की जाँच कर रहा था; हालाँकि, याचिकाकर्ता उत्तर प्रदेश के करदाता थे और उनका मूल निर्धारण उसी राज्य के आयकर अधिकारियों द्वारा किया गया था। यह तर्क दिया गया था कि पंजाब उच्च न्यायालय के पास, संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत उक्त आयोग को कोई रिट जारी करने का क्षेत्राधिकार नहीं है। इस न्यायालय ने, रिट जारी करने की उच्च न्यायालय की शक्ति पर लागू होने वाली दो सीमाओं को पुनः स्पष्ट करने के बाद, यह निर्णय दिया कि उक्त आयोग पंजाब उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार के अधीन है और, इसलिए, पंजाब उच्च न्यायालय के पास रिट जारी करने का क्षेत्राधिकार है। यह निर्णय भी दिल्ली में स्थित एक सांविधिक प्राधिकरण (statutory authority) से संबंधित मामले पर ही लागू होता है, और इसका केंद्र सरकार (Union Government) के मामले पर कोई अनुप्रयोग नहीं है। यह प्रश्न कि क्या भारत सरकार पर लागू होने वाले सिद्धांत, किसी एक राज्य में

(1) (1954) एस.सी.आर 738

स्थित, किंतु किसी अन्य राज्य में अपना क्षेत्राधिकार प्रयोग करने वाले सांविधिक प्राधिकरणों पर भी समान रूप से लागू होंगे–इस मामले में विचारार्थ उपस्थित नहीं होता; यद्यपि, जैसा कि मैं पहले ही व्यक्त कर चुका हूँ, मेरा प्रथम दृष्टया (prima facie) यह मत है कि ऐसा न होने का कोई कारण नहीं है।

अब हाई कोर्ट के फ़ैसले पर आते हैं, तो मकबूलुन्निसा बनाम यूनियन ऑफ इंडिया (1) मामले में संबंधित सिद्धांतों का साफ़ तौर पर ज़िक्र किया गया है। इलाहाबाद हाई कोर्ट की फ़ुल बेंच ने सीधे तौर पर उस मुद्दे पर फ़ैसला दिया, जो अब हमारे सामने उठाया गया है। इस फ़ैसले की अहमियत इस बात में है कि माननीय जजों ने इस समस्या पर विचार करते समय, इस कोर्ट के 'साका वेंकट राव' मामले (2) के फ़ैसले से खुद को प्रभावित नहीं होने दिया; जबकि वह फ़ैसला, इस फ़ैसले के बाद ही आया था। संविधान के संबंधित अनुच्छेदों पर विचार करने के बाद, फ़ुल बेंच की ओर से बोलते हुए, जस्टिस सप्रू ने पृष्ठ 293-294 पर इस प्रकार टिप्पणी की:

सरकार और किसी निगम या संयुक्त स्टॉक कंपनी के बीच तुलना करना, जिसका अधिवास (domicile) उस स्थान पर माना जाता है जहाँ उसका प्रधान कार्यालय स्थित है, भ्रामक है। यह मानना कि इस न्यायालय का क्षेत्राधिकार केंद्र सरकार तक विस्तारित नहीं होता, क्योंकि उसकी राजधानी दिल्ली में है और इसलिए उसका अधिवास भी दिल्ली में ही माना जाना चाहिए–इसका अर्थ यह होगा कि केंद्र सरकार को, न केवल 'भाग III' में प्रदत्त अधिकारों के संबंध में, बल्कि किसी भी अन्य उद्देश्य के लिए भी, पंजाब उच्च न्यायालय को छोड़कर अन्य सभी राज्य उच्च न्यायालयों के क्षेत्राधिकार से बाहर कर दिया जाए।

माननीय न्यायाधीश ने पृष्ठ 294 पर आगे यह कहा–

हमारी राय में, अनुच्छेद 226 के तहत हस्तक्षेप करने का इस न्यायालय का क्षेत्राधिकार इस बात पर निर्भर नहीं करता कि सरकार का मुख्यालय या राजधानी कहाँ स्थित है, बल्कि इस तथ्य पर निर्भर करता है कि सरकार (चाहे वह केंद्र सरकार हो या राज्य सरकार) द्वारा किए गए कार्य का प्रभाव इस न्यायालय की क्षेत्रीय सीमाओं के भीतर पड़ता है या नहीं।

अनुच्छेद 226 में प्रयुक्त शब्दों "कोई भी सरकार" का उल्लेख करते हुए, विद्वान न्यायाधीश ने पृष्ठ 292 पर इस प्रकार टिप्पणी की:

(1) आई.एल.आर. [1953] ऑल. 89 (2) [1953] एस.सी.आर. 1144.

वे इस बात का संकेत देते हैं कि संस्थापक पिताओं को यह ज्ञात था कि एक ही क्षेत्र के भीतर एक से अधिक सरकारें कार्य करेंगी।

मैं माननीय न्यायाधीश की टिप्पणियों से पूरी तरह सहमत हूँ, क्योंकि वे न केवल अनुच्छेद 226 के प्रावधानों की सही व्याख्या करती हैं, बल्कि संविधान निर्माताओं के आशय को भी प्रभावी बनाती हैं।

साका वेंकटा राव के मामले (1) में इस न्यायालय के फ़ैसले के बाद, मध्य प्रदेश के हाई कोर्ट ने सूरजमल बनाम मध्य प्रदेश राज्य (2) के मामले में इस सवाल पर विचार किया। वहाँ, केंद्र सरकार ने एक माइनिंग लीज़ के लिए दिए गए आवेदन को खारिज कर दिया था, और आवेदन खारिज करने का वह आदेश आवेदक को भेज दिया गया था, जो मध्य प्रदेश राज्य में रहता था। हाई कोर्ट ने यह फ़ैसला दिया कि माँगी गई रिट जारी नहीं की जा सकती थी, ताकि वह केंद्र सरकार पर बाध्यकारी हो सके, क्योंकि: **"(ए)** केंद्र सरकार को हाई कोर्ट के अधिकार क्षेत्र के भीतर स्थायी रूप से स्थित या आम तौर पर अपना कामकाज करने वाला नहीं माना जा सकता था; **(बी)** जिस मामले का फ़ैसला केंद्र सरकार ने किया था, उसका रिकॉर्ड हाई कोर्ट के सामने नहीं था, और राज्य के भीतर किसी भी कानूनी हिरासत से उसे उपलब्ध नहीं कराया जा सकता था; **(सी)** राज्य सरकार के आदेश को केंद्र सरकार के आदेश में विलीन (मर्ज) हुआ माना जाना चाहिए; **(डी)** राज्य सरकार के आदेश को तब तक नहीं छुआ जा सकता था, जब तक कि केंद्र सरकार के आदेश को हाई कोर्ट के सामने लाकर रद्द न कर दिया जाए।" यहाँ हमारा सरोकार पहले और दूसरे आधार से है। माननीय मुख्य न्यायाधीश, जिन्होंने पूर्ण पीठ (Full Bench) की ओर से फ़ैसला सुनाया, उन्होंने साका वेंकटा राव के मामले (1) में इस न्यायालय के फ़ैसले के सिद्धांत को केंद्र सरकार पर लागू किया; और पहले से बताए गए कारणों से, मेरी राय है कि यह फ़ैसला केंद्र सरकार के मामले पर लागू नहीं होता है। दूसरा कारण, असल में, प्रक्रिया को मूल विधि (substantive law) से ऊँचे दर्जे पर रख देता है। यह सच है कि 'उत्प्रेषण' (certiorari) रिट में रिकॉर्ड्स मंगाए जाते हैं; लेकिन, अगर एक बार यह मान लिया जाए कि संविधान के अनुच्छेद 226 के अर्थ के तहत, केंद्र सरकार भी 'राज्य' के दायरे में आती है, तो मुझे नहीं लगता

(1) [1953] एस.सी.आर. 1144 **(2)** ए.आई.आर. 1958 एम.पी. 103

कि हाई कोर्ट अपनी संवैधानिक शक्तियों का इस्तेमाल करते हुए केंद्र सरकार को यह निर्देश क्यों नहीं दे सकता कि वह रिकॉर्ड्स को, चाहे उसके अधिकारियों ने उन्हें कहीं भी रखा हो, पेश करे। यह दूसरा आधार असल में पहले आधार का ही एक स्वाभाविक परिणाम है, यानी यह कि केंद्र सरकार संबंधित हाई कोर्ट के क्षेत्रीय अधिकार क्षेत्र में नहीं आती है।

बॉम्बे हाई कोर्ट ने राधेश्याम माखनलाल बनाम भारतीय संघ (1) मामले में यह भी फ़ैसला दिया कि भारत सरकार के ख़िलाफ़ कोई रिट जारी नहीं की जा सकती, जिसका दफ़्तर हाई कोर्ट के क्षेत्रीय अधिकार क्षेत्र से बाहर स्थित हो। जस्टिस शाह ने साका वेंकट राव (2) मामले के फ़ैसले के सिद्धांत को भारत सरकार पर लागू करते हुए यह फ़ैसला दिया कि, चूंकि भारत सरकार का दफ़्तर बॉम्बे राज्य के भीतर स्थित नहीं था, इसलिए बॉम्बे हाई कोर्ट भारत सरकार को कोई रिट जारी नहीं कर सकता था। लेकिन जस्टिस एस. टी. देसाई इतनी दूर तक जाने को तैयार नहीं थे, और उन्होंने अपने निष्कर्ष का आधार एक संकरा तर्क बनाया, यानी, कि भले ही रिट जारी कर दी जाए, लेकिन उसे लागू नहीं किया जा सकता। मैं पहले ही यह बता चुका हूं कि ये दोनों ही तर्क मान्य नहीं हैं। भारत सरकार बॉम्बे राज्य के भीतर ही मानी जाएगी, जहां तक वह उस राज्य में अपनी शक्तियों का प्रयोग करती है; और हाई कोर्ट के पास भारत सरकार को रिट जारी करने की संवैधानिक शक्ति है; इसलिए, उनकी प्रवर्तनीयता इस बात पर निर्भर नहीं करती कि उसके अधिकारी किसी विशेष स्थान पर रहते हैं या नहीं।

ऊपर की चर्चा को इन बातों में संक्षेप में कहा जा सकता है: **(1)** संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत हाई कोर्ट की शक्ति बहुत व्यापक है और यह केवल बंदी प्रत्यक्षीकरण (habeas corpus) आदि जैसी रिट जारी करने तक ही सीमित नहीं है, बल्कि यह किसी भी व्यक्ति या प्राधिकरण, और उचित मामलों में किसी भी सरकार के खिलाफ भी निर्देश या आदेश जारी कर सकता है। **(2)** संविधान बनाने वालों का इरादा स्पष्ट है, और उन्होंने इस अनुच्छेद में "कोई भी सरकार" शब्द का इस्तेमाल किया है, जिसका सामान्य अर्थ में संघ सरकार भी शामिल होनी चाहिए। **(3)** हाई कोर्ट उन क्षेत्रों में, जिन पर उसका अधिकार क्षेत्र है, और उन क्षेत्रों के भीतर किसी भी व्यक्ति, प्राधिकरण या सरकार के खिलाफ रिट जारी कर सकता है। **(4)** संघ सरकार का किसी एक खास जगह पर कोई संवैधानिक स्थान नहीं है, लेकिन वह उन मामलों के संबंध में अपनी कार्यकारी शक्तियों का इस्तेमाल करती है जिन पर संसद को कानून बनाने की शक्ति है, और

(1) ए.आई.आर.1960 बॉम्बे 353 (2) [1953] एस.सी.आर. 1144

इस संबंध में शक्ति का इस्तेमाल पूरे भारत में किया जा सकता है; इसलिए, कानून की नज़र में संघ सरकार का पूरे भारत में कार्यात्मक अस्तित्व माना जाना चाहिए। **(5)** जब अपनी शक्तियों का इस्तेमाल करते हुए संघ सरकार कोई ऐसा आदेश जारी करती है जो किसी ऐसे व्यक्ति के कानूनी अधिकार या हित का उल्लंघन करता है जो उन क्षेत्रों में रहता है जिन पर किसी खास हाई कोर्ट का अधिकार क्षेत्र है, तो वह हाई कोर्ट संघ सरकार को रिट जारी कर सकता है, क्योंकि कानून की नज़र में उसे उस राज्य के "भीतर" भी माना जाना चाहिए। **(6)** संघ सरकार के खिलाफ रिट जारी करके हाई कोर्ट अपने क्षेत्रीय अधिकार क्षेत्र से बाहर नहीं जा रहा है, क्योंकि आदेश उक्त सरकार के खिलाफ राज्य के "भीतर" ही जारी किया गया है। **(7)** यह तथ्य कि सुविधा के लिए, उक्त सरकार का कोई खास अधिकारी जो आदेश जारी करता है, हाई कोर्ट की क्षेत्रीय सीमाओं के बाहर रहता है, कोई मायने नहीं रखता, क्योंकि संघ सरकार को ही रिकॉर्ड पेश करना होगा या आदेश का पालन करना होगा, जैसा भी मामला हो। **(8)** हाई कोर्ट द्वारा जारी किए गए आदेशों को निश्चित रूप से संघ सरकार के खिलाफ लागू किया जा सकता है, क्योंकि वह उसके अधिकार क्षेत्र के अधीन है, और यदि उनका पालन नहीं किया जाता है, तो वह अवमानना के लिए उत्तरदायी होगी। **(9)** भले ही अधिकारी भौतिक रूप से अपने क्षेत्रीय अधिकार क्षेत्र से बाहर रहते हों, फिर भी उच्च न्यायालय 'न्यायालयों की अवमानना अधिनियम' के तहत उन तक पहुँच सकता है; बशर्ते वे केंद्र सरकार के विरुद्ध विधिवत पारित आदेशों की अवहेलना करने का निर्णय लें–एक ऐसी स्थिति जिसकी कल्पना करना या जिसकी सामान्यतः अपेक्षा करना आसान नहीं है। **(10)** आदेशों को संप्रेषित करने में आने वाली कठिनाइयाँ प्रक्रिया के नियमों से संबंधित हैं, और केंद्र सरकार अथवा उसके अधिकारियों तक इन आदेशों को पहुँचाने के लिए पर्याप्त एवं उचित नियम बनाए जा सकते हैं।

उपर्युक्त कारणों से, मैं यह मानता हूँ कि संविधान का अनुच्छेद 32(2ए) जम्मू और कश्मीर के उच्च न्यायालय को यह अधिकार देता है कि वह केंद्र सरकार के विरुद्ध, उस सरकार द्वारा किए गए ऐसे किसी कार्य के संबंध में, जो उस राज्य में संबंधित पक्षों के मौलिक अधिकारों का उल्लंघन करता हो, रिट जारी करे।

परिणामस्वरूप, मैं अपील स्वीकार करता हूँ, उच्च न्यायालय के आदेश को रद्द करता हूँ और

उसे निर्देश देता हूँ कि वह इस मामले का निपटारा विधि के अनुसार करे। अपीलकर्ता को उसका खर्च मिलेगा।

दास गुप्ता, न्यायमूर्ति – मुझे माननीय मुख्य न्यायाधीश और न्यायमूर्ति सुब्बा राव द्वारा तैयार किए गए निर्णयों को पढ़ने का अवसर मिला है। मैं मुख्य न्यायाधीश द्वारा निकाले गए इस निष्कर्ष से सहमत हूँ कि अपील को खारिज कर दिया जाना चाहिए। तथापि, चूंकि मैं इस निष्कर्ष पर तर्क की थोड़ी भिन्न प्रक्रिया के माध्यम से पहुँचा हूँ, इसलिए मैं संक्षेप में उन कारणों को बताना चाहूँगा।

तथ्यों का पूरा विवरण मेरे लॉर्ड मुख्य न्यायाधीश के फ़ैसले में दिया जा चुका है और उन्हें दोहराने की ज़रूरत नहीं है। यह कहना ही काफ़ी होगा कि अपीलकर्ता ने संविधान के अनुच्छेद 32(2ए) के तहत जम्मू और कश्मीर हाई कोर्ट में एक अर्ज़ी दायर की थी। इस अर्ज़ी में एक उचित रिट, आदेश या निर्देश जारी करने की मांग की गई थी, ताकि भारत सरकार और जम्मू और कश्मीर राज्य को 31 जुलाई, 1954 के भारत सरकार के पत्र में दिए गए आदेश को लागू करने से रोका जा सके। इस आदेश के तहत, भारत सरकार ने अपीलकर्ता को 12 अगस्त, 1954 से पहले ही अनिवार्य रूप से रिटायर करने का आदेश दिया था। उत्तरदाताओं की ओर से एक शुरुआती आपत्ति उठाई गई थी कि भारत सरकार, जम्मू और कश्मीर हाई कोर्ट के अधिकार क्षेत्र की भौगोलिक सीमाओं के भीतर आने वाली सरकार नहीं है, और इसलिए यह अर्ज़ी सुनवाई योग्य नहीं है। हाई कोर्ट ने इस आपत्ति को सही माना और अर्ज़ी को खारिज कर दिया। इस अपील में विवाद का एकमात्र सवाल यह है कि क्या इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए, हाई कोर्ट के पास संविधान के अनुच्छेद 32(2ए) के तहत भारत सरकार को रिट जारी करने का अधिकार क्षेत्र था।

संविधान का अनुच्छेद 32(2ए), जिसके अंतर्गत अपीलकर्ता ने उच्च न्यायालय से राहत की मांग की थी, निम्नलिखित शब्दों में है :-

खंड (1) और (2) द्वारा प्रदत्त शक्तियों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, उच्च न्यायालय को उन सभी क्षेत्रों में, जिनके संबंध में वह अधिकारिता का प्रयोग करता है, किसी भी व्यक्ति या प्राधिकारी को, जिनमें उपयुक्त मामलों में उन क्षेत्रों के भीतर की कोई सरकार भी शामिल है,

निर्देश, आदेश या रिट जारी करने की शक्ति होगी; इन रिटों में बंदी प्रत्यक्षीकरण (habeas corpus), परमादेश (mandamus), प्रतिषेध (prohibition), अधिकार-पृच्छा (quo warranto) और उत्प्रेषण (certiorari) की प्रकृति वाली रिटें, या उनमें से कोई भी रिट शामिल है, और ये रिटें इस भाग द्वारा प्रदत्त किसी भी अधिकार के प्रवर्तन के लिए जारी की जाएंगी।

इस बात को छोड़कर कि इस अनुच्छेद में "हाई कोर्ट" का मतलब सिर्फ़ जम्मू-कश्मीर राज्य का हाई कोर्ट है, जबकि संविधान का अनुच्छेद 226 बाकी सभी हाई कोर्ट्स की बात करता है; और इस बात को भी छोड़कर कि इस अनुच्छेद से मिली शक्ति सिर्फ़ संविधान के भाग III द्वारा दिए गए अधिकारों को लागू करने के लिए है, जबकि अनुच्छेद 226 संघ के हाई कोर्ट्स को न सिर्फ़ भाग III द्वारा दिए गए अधिकारों को लागू करने की शक्ति देता है, बल्कि किसी भी दूसरे मकसद के लिए भी शक्ति देता है–इन दोनों अनुच्छेदों के प्रावधान बिल्कुल एक जैसे हैं। हाई कोर्ट को कुछ मामलों में उचित रिट और आदेश जारी करके राहत देने की शक्ति दी गई है: **(1)** किसी भी व्यक्ति को; **(2)** सरकार के अलावा किसी भी प्राधिकरण को; और **(3)** किसी भी सरकार को। इस शक्ति का इस्तेमाल इस शर्त के अधीन है कि वह व्यक्ति, सरकार, या सरकार के अलावा कोई प्राधिकरण "उन क्षेत्रों के भीतर होना चाहिए जिनके संबंध में हाई कोर्ट अपना अधिकार क्षेत्र इस्तेमाल करता है"। किसी सरकार को रिट या आदेश जारी करने के संबंध में एक खास सीमा "किसी भी सरकार" शब्दों से पहले "उचित मामलों में" शब्दों द्वारा जोड़ी गई है। "उचित मामलों में" शब्दों के असर पर बाद में विचार करने के लिए छोड़ते हुए, हमें सबसे पहले इस सवाल की जांच करनी होगी: कोई सरकार किसी खास हाई कोर्ट के अधिकार क्षेत्र वाले क्षेत्रों के भीतर कब मानी जाती है? पहले उत्तरदाता, भारत संघ की ओर से, यह तर्क दिया गया है कि किसी हाई कोर्ट के अधिकार क्षेत्र वाले क्षेत्रों के भीतर होने के लिए, सरकार का उन क्षेत्रों के भीतर स्थित होना ज़रूरी है। यह बताया गया है कि "कोई भी व्यक्ति" किसी खास क्षेत्र के भीतर होने के लिए, उसे उन क्षेत्रों के भीतर मौजूद होना पड़ता है; सरकार के अलावा किसी प्राधिकरण को भी, यह कहे जाने से पहले कि वह किसी खास क्षेत्र के भीतर है, उन क्षेत्रों के भीतर अपना दफ़्तर होने के कारण एक भौतिक अस्तित्व रखना पड़ता है। यह तर्क दिया गया है कि किसी खास क्षेत्र के भीतर स्थित होने की यही शर्त सरकारों के मामले में भी लागू होनी चाहिए। यह तर्क निस्संदेह आकर्षक है और पहली नज़र में तो यह काफ़ी हद तक सही भी लगता है। हालाँकि, बारीकी से जाँच करने पर यह साफ़ हो जाता है कि यह तर्क समस्या को बहुत ज़्यादा सरल बना देता है; ऐसा करके यह उस ग़लत धारणा को नज़रअंदाज़

कर देता है कि सरकार का भी कोई स्थान (location) होता है, ठीक वैसे ही जैसे किसी व्यक्ति या सरकार के अलावा किसी अन्य संस्था का होता है। क्या सरकार का भी कोई स्थान उसी अर्थ में होता है, जैसे किसी व्यक्ति का किसी भी समय किसी खास जगह पर मौजूद होने के कारण उसका एक स्थान होता है, या जैसे सरकार के अलावा किसी अन्य संस्था का स्थान उस जगह को माना जाता है जहाँ उसका दफ़्तर स्थित होता है? इसमें कोई शक नहीं कि जब हम किसी सरकार के बारे में सोचते हैं–चाहे वह राज्यों की सरकार हो या केंद्र सरकार–तो असल में हम 'राज्य' (State) के कार्यकारी अंग के बारे में सोच रहे होते हैं। केंद्र की कार्यकारी शक्ति, संविधान के अनुच्छेद 53 के तहत, राष्ट्रपति में निहित होती है और उसका प्रयोग राष्ट्रपति द्वारा ही किया जाना होता है। राज्यों की कार्यकारी शक्ति उन राज्यों के राज्यपालों में निहित होती है और उसका प्रयोग राज्यपालों द्वारा ही किया जाना होता है। लेकिन, क्या इसका यह मतलब निकलता है कि भारत सरकार का स्थान उस जगह पर है जहाँ राष्ट्रपति रहते हैं, और इसी तरह, हर राज्य सरकार का स्थान उस जगह पर है जहाँ उस राज्य के राज्यपाल रहते हैं? यह ध्यान देना ज़रूरी है कि जहाँ एक ओर संविधान के अनुच्छेद 130 में इस बारे में स्पष्ट प्रावधान किए गए हैं कि सर्वोच्च न्यायालय (Supreme Court) कहाँ बैठेगा (कार्य करेगा), वहीं दूसरी ओर, इस बारे में कोई प्रावधान नहीं किया गया है कि भारत का राष्ट्रपति कहाँ रहेगा या अपनी निहित कार्यकारी शक्तियों का प्रयोग कहाँ से करेगा। संविधान का अनुच्छेद 231 हर राज्य के उच्च न्यायालय (High Court) के लिए एक 'प्रधान पीठ' (principal seat) का ज़िक्र करता है। हालाँकि, जब हम "भारत के राष्ट्रपति या राज्यों के राज्यपालों" के लिए किसी 'प्रधान पीठ' का ज़िक्र ढूँढ़ते हैं, तो हमें निराशा ही हाथ लगती है। यह तथ्य कि भारत के राष्ट्रपति के लिए दिल्ली में 'राष्ट्रपति भवन' के रूप में एक विशेष निवास स्थान है, और राज्यों के राज्यपालों के लिए भी राज्यों के भीतर कुछ जगहों पर 'राजभवन' के रूप में विशेष निवास स्थान हैं–अक्सर हमें यह बात भुला देता है कि संविधान में राष्ट्रपति या राज्यपालों के लिए किसी भी निवास स्थान का कोई प्रावधान नहीं किया गया है। भारत के राष्ट्रपति को संघ के भीतर एक से अधिक स्थायी निवास स्थान रखने से रोकने वाला कोई नियम नहीं है। यदि ऐसा होता है और भारत के राष्ट्रपति के लिए दिल्ली स्थित निवास के अतिरिक्त, मान लीजिए, बंबई, कलकत्ता और मद्रास में भी निवास स्थान उपलब्ध कराए जाते हैं, तो क्या यह कहा जा सकता है कि भारत सरकार दिल्ली में स्थित है जब राष्ट्रपति दिल्ली में निवास करते हैं; कलकत्ता चली जाती है जब वे कलकत्ता में निवास करते हैं; बंबई चली जाती है जब राष्ट्रपति बंबई में निवास करते हैं; और

मद्रास चली जाती है जब राष्ट्रपति मद्रास जाकर निवास करते हैं? पहली नज़र में यह एक विचित्र उदाहरण प्रतीत हो सकता है; परंतु जब हम यह स्मरण करते हैं कि वास्तव में ब्रिटिश शासनकाल के दिनों में, वायसराय का वर्ष के कुछ भाग के लिए शिमला में एक स्थायी निवास स्थान होता था और वर्ष के शेष भाग के लिए कलकत्ता में एक अन्य स्थायी निवास स्थान होता था (1911 से पूर्व), और 1911 के पश्चात् एक स्थायी निवास स्थान दिल्ली में तथा दूसरा शिमला में होता था, तो यह समझना सहज हो जाता है कि ऊपर उदाहरण के रूप में जो बात कही गई है, वह किसी भी प्रकार से असंभव नहीं है। अतः, यदि किसी सरकार को उस स्थान पर स्थित माना जाए जहाँ राज्य का प्रमुख–भारत सरकार के मामले में राष्ट्रपति और प्रत्येक राज्य के मामले में राज्यपाल–निवास करता है, तो किसी भी विशिष्ट स्थान को उस स्थान के रूप में इंगित करना असंभव हो सकता है जहाँ सरकार पूरे वर्ष स्थित रहती है। हो सकता है कि इससे किसी राज्य सरकार के, उस राज्य के उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार के भीतर होने के प्रश्न पर कोई प्रभाव न पड़े। क्योंकि राज्यपाल का निवास स्थान चाहे कोई भी हो, वह अनिवार्य रूप से उस राज्य के क्षेत्राधिकार के भीतर ही स्थित होगा। तथापि, भारत सरकार के किसी विशिष्ट उच्च न्यायालय के क्षेत्रीय क्षेत्राधिकार के भीतर होने के संबंध में स्थिति पूर्णतः अनिश्चित और जटिल हो जाएगी। यदि सरकार के स्थान का निर्धारण करने हेतु राष्ट्रपति के निवास को ही मापदंड माना जाए, तो यह संभव है कि वर्ष के कुछ भाग के लिए भारत सरकार एक उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार में स्थित हो, और वर्ष के शेष भाग के लिए किसी अन्य उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार में। अतः, भारत सरकार कहाँ स्थित है–इस बात का निर्णय करने हेतु भारत के राष्ट्रपति के निवास को आधार मानना पूर्णतः अतार्किक होगा।

राष्ट्रपति के निवास स्थान वाले मापदंड को भ्रामक पाते हुए, कोई यह तर्क दे सकता है कि भारत सरकार या किसी राज्य की सरकार उस स्थान पर स्थित मानी जानी चाहिए, जहाँ संबंधित मंत्रालयों के कार्यालय स्थित हैं। अनुच्छेद 77 के तहत, राष्ट्रपति भारत सरकार के कामकाज का बँटवारा मंत्रियों के बीच करते हैं; वहीं अनुच्छेद 166 के तहत, किसी राज्य के राज्यपाल उस राज्य की सरकार के कामकाज का बँटवारा राज्य के मंत्रियों के बीच करते हैं–

सिवाय उन मामलों के, जिनमें राज्यपाल को अपने विवेक से कार्य करने की आवश्यकता होती है। इसलिए, यदि यह कहना सही होता कि भारत सरकार के सभी मंत्रियों को अपने आवंटित कार्यों का निष्पादन किसी एक ही विशिष्ट स्थान पर करना अनिवार्य है, तो यह तर्कसंगत माना जा सकता था कि भारत सरकार का मुख्यालय या केंद्र उसी स्थान पर स्थित है। इसी प्रकार, यदि किसी राज्य के सभी मंत्रियों को अपने आवंटित कार्यों का निष्पादन किसी एक ही विशिष्ट स्थान पर करना अनिवार्य होता, तो उस राज्य की सरकार को भी उसी स्थान पर स्थित माना जा सकता था। तथापि, संविधान में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है जो यह अनिवार्य करता हो कि किसी राज्य के सभी मंत्री अपने कार्यों का निष्पादन उस राज्य के भीतर किसी एक ही विशिष्ट स्थान पर करें; न ही ऐसा कोई प्रावधान है कि केंद्र सरकार के मंत्री अपने कार्यों का निष्पादन किसी एक ही विशिष्ट स्थान पर करें। ऐसी परिस्थितियाँ न केवल आपातकाल के दौरान, बल्कि सामान्य समय में भी उत्पन्न हो सकती हैं, जब सरकार के कुछ मंत्रियों को अपने आवंटित कार्यों का निपटारा उन स्थानों पर करना आवश्यक और वांछनीय प्रतीत हो सकता है, जो उन स्थानों से भिन्न हों जहाँ शेष मंत्री कार्य कर रहे हैं। पाकिस्तान से आए शरणार्थियों का पुनर्वास भारत सरकार के कामकाज का ही एक हिस्सा है, और इस कार्य के समुचित निष्पादन हेतु 'शरणार्थी पुनर्वास मंत्रालय' का गठन किया गया है। यह सर्वविदित है कि इस मंत्रालय के प्रभारी मंत्री को अपने कार्य का एक बड़ा हिस्सा पश्चिम बंगाल के कलकत्ता (कोलकाता) में रहकर संपादित करना पड़ता है, और वे वर्ष का एक काफी बड़ा हिस्सा वहीं व्यतीत करते हैं। इस मंत्रालय के अनेक कार्यालय कलकत्ता में ही स्थित हैं। जो बात इस मंत्रालय के संदर्भ में सत्य है, वही बात अन्य मंत्रालयों के संदर्भ में भी लागू हो सकती है। विशेष परिस्थितियों की माँग हो सकती है कि वाणिज्य मंत्रालय के कामकाज का कुछ हिस्सा दिल्ली के बजाय मुंबई, कलकत्ता या मद्रास जैसे स्थानों पर संपादित किया जाए; और यदि ऐसा होता है, तो वह मंत्री जिसे वाणिज्य से संबंधित भारत सरकार के कामकाज का दायित्व सौंपा गया है अपने कार्यों का निष्पादन दिल्ली के बजाय इन्हीं स्थानों पर करेगा। यदि जनहित की यह माँग हो कि रक्षा मंत्रालय के कामकाज का अधिकांश हिस्सा, सुरक्षा या अन्य कारणों से, दिल्ली से दूर किसी अन्य स्थान पर चलाया जाए, तो रक्षा मंत्री को अपना कामकाज उसी स्थान पर निपटाना होगा।

इसलिए यह स्पष्ट है कि यद्यपि किसी भी विशेष समय पर भारत सरकार के किसी मंत्रालय के किसी विशेष स्थान पर स्थित होने की बात कही जा सकती है, तथापि संपूर्ण भारत सरकार का उसी स्थान पर स्थित होना अनिवार्य नहीं है। मेरी राय में, इसलिए किसी भी सरकार के स्थान (location) के बारे में बात करना न तो सही है और न ही उचित। और न ही भारत सरकार के स्थान का निर्धारण करने के लिए कोई अन्य संतोषजनक मापदंड खोजना संभव है।

इलेक्शन कमीशन, इंडिया बनाम साका वेंकट सुब्बा राव (1) मामले में, इस अदालत ने यह फ़ैसला दिया था कि अनुच्छेद 226 के तहत किसी अथॉरिटी के ख़िलाफ़ रिट जारी करने से पहले, उस अथॉरिटी का हाई कोर्ट के अधिकार क्षेत्र वाले इलाकों में स्थित होना ज़रूरी है। हालाँकि, उस मामले में अदालत का किसी सरकार से कोई लेना-देना नहीं था, और उसे इस बात पर विचार करने का कोई मौक़ा नहीं मिला कि क्या किसी सरकार को भी 'स्थित' माना जा सकता है। इसलिए, उस मामले और बाद के मामले के.एस. राशिद एंड सन बनाम द इनकम-टैक्स इन्वेस्टिगेशन कमीशन (2) आदि में दिए गए फ़ैसले हमें इस बात से बाध्य नहीं करते कि हम यह मान लें कि किसी सरकार की भी कोई 'स्थिति' होती है–ठीक उसी तरह जैसे इलेक्शन कमीशन या इनकम-टैक्स इन्वेस्टिगेशन कमीशन जैसी किसी अथॉरिटी की होती है। इसलिए, यह मानना तर्कसंगत लगता है कि किसी सरकार के हाई कोर्ट के अधिकार क्षेत्र वाले इलाकों में होने की शर्त को पूरा करने के लिए बस इतना ही काफ़ी है कि वह सरकार उन इलाकों के भीतर काम कर रही हो। भारत सरकार पूरे भारत के इलाक़े में काम करती है। इसलिए, इस निष्कर्ष से बचा नहीं जा सकता कि भारत सरकार, जम्मू और कश्मीर के उच्च न्यायालय सहित, हर उच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र वाले इलाकों के भीतर ही स्थित है।

"कोई भी सरकार" शब्दों का प्रयोग मुझे एक अतिरिक्त कारण प्रतीत होता है–यह मानने के लिए कि भारत सरकार भी उन क्षेत्रों के अंतर्गत आती है जो जम्मू और कश्मीर उच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र में हैं। इस संदर्भ में "कोई भी सरकार" का अर्थ 'हर सरकार' के सिवा और कुछ नहीं हो सकता। यदि 'स्थान-आधारित परीक्षण' (location test) लागू किया जाए, तो जम्मू और कश्मीर राज्य के क्षेत्रों के भीतर एकमात्र सरकार जम्मू और कश्मीर की सरकार ही होगी। ऐसे में, उच्च न्यायालय को अपने क्षेत्रों के भीतर "किसी भी सरकार" के विरुद्ध राहत देने की

(1) (1953) एस.सी.आर. 1144. (2) (1954) एस.सी.आर. 738

शक्ति प्रदान करना अर्थहीन हो जाएगा। "कोई भी सरकार" शब्दों का प्रयोग इसलिए किया गया था, क्योंकि संविधान निर्माताओं का यह आशय था कि उच्च न्यायालय के पास भारत सरकार के विरुद्ध भी राहत देने की शक्ति हो।

लेकिन, उत्तरदाता का तर्क है कि इससे एक ऐसी असहनीय स्थिति पैदा हो जाएगी जिसकी संविधान निर्माताओं ने कल्पना भी नहीं की होगी। कहा जाता है कि भारत सरकार के भारत के हर हाई कोर्ट के अधिकार क्षेत्र में आने का नतीजा यह होगा कि भारत सरकार को भारत के हर हाई कोर्ट के रिट और आदेशों का पालन करना पड़ेगा। भारत सरकार के खिलाफ राहत चाहने वाला कोई भी व्यक्ति स्वाभाविक रूप से उसी हाई कोर्ट को चुनेगा जो उसके लिए सबसे सुविधाजनक हो; और इस तरह, भारत सरकार को एक ही आदेश के खिलाफ, जो कई लोगों को प्रभावित करता हो, भारत के अलग-अलग हाई कोर्ट में राहत के लिए दायर आवेदनों का सामना करना पड़ सकता है। यदि भारत सरकार के लिए इतनी असुविधाजनक स्थिति, भले ही राहत चाहने वाले लोगों के लिए वह बहुत सुविधाजनक हो, वास्तव में संविधान निर्माताओं द्वारा इस्तेमाल किए गए शब्दों के कारण ही पैदा होती है, तो मैं, अपनी ओर से, केवल सरकार की मदद करने के लिए उन शब्दों की उचित व्याख्या करने से पीछे हटने से इनकार कर दूँगा। हालाँकि, मुझे नहीं लगता कि इसका नतीजा ऐसा ही होगा। क्योंकि, "उचित मामलों में" शब्दों को ठीक से पढ़ने पर, मुझे ऐसा लगता है कि हर उस कार्य या चूक के लिए, जिसके संबंध में राहत का दावा किया जा सकता है, केवल एक ही हाई कोर्ट होगा जो अपना अधिकार क्षेत्र इस्तेमाल कर सकेगा।

सबसे पहले यह ध्यान देना ज़रूरी है कि "उचित मामलों में" शब्दों के इस्तेमाल से जो सीमा तय की गई है, वह सरकार के अलावा अन्य व्यक्तियों और अधिकारियों को रिट जारी करने के मामले में लागू नहीं होती। यह सुझाव दिया गया है कि इन शब्दों का मतलब यह है कि किसी भी सरकार के खिलाफ रिट जारी करते समय हाई कोर्ट को वैसी आज़ादी नहीं होती, जैसी उसे सरकार के अलावा किसी अन्य व्यक्ति या अधिकारी के खिलाफ रिट जारी करते समय होती है; और जब किसी सरकार के खिलाफ राहत मांगी जाती है, तो हाई कोर्ट को खास सावधानी बरतनी पड़ती है ताकि यह सुनिश्चित हो सके कि रिटें अंधाधुंध तरीके से नहीं, बल्कि केवल उचित मामलों में ही जारी की जाएं। मुझे इस सुझाव को खारिज करने में कोई हिचकिचाहट नहीं है। एक पल के लिए भी यह गंभीरता से नहीं सोचा जा सकता कि संविधान निर्माताओं का इरादा अदालतों के लिए अलग-अलग मानक तय करने का था—एक तब, जब सरकार के

खिलाफ राहत मांगी जाए, और दूसरा तब, जब अन्य 'अधिकारियों' के खिलाफ राहत मांगी जाए। हर उस मामले में, जहाँ अनुच्छेद 226 के तहत राहत मांगी जाती है, हाई कोर्ट का यह कर्तव्य है कि वह अपने विवेक का इस्तेमाल करके यह तय करे कि राहत दी जानी चाहिए या नहीं। यह भी उतना ही स्पष्ट है कि ऐसे विवेक का इस्तेमाल करते समय, हाई कोर्ट केवल उचित मामलों में ही राहत देगा, न कि उन मामलों में जहाँ राहत नहीं दी जानी चाहिए।

तो फिर ये शब्द "उचित मामलों में" इस्तेमाल ही क्यों किए गए? मुझे ऐसा लगता है कि संविधान बनाने वाले इस बात से भली-भांति परिचित थे कि अगर देश के सभी हाई कोर्ट को केंद्र सरकार के खिलाफ रिट जारी करने का अधिकार दे दिया जाए–इस आधार पर कि केंद्र सरकार उनके अधिकार क्षेत्र में काम कर रही है–तो कितनी मुश्किलें पैदा हो सकती हैं। इसलिए, वे यह अधिकार केवल उसी हाई कोर्ट को देना चाहते थे, जहाँ वह काम या चूक हुई हो, जिसके संबंध में राहत की मांग की जा रही है। हर उस मामले में, जहाँ अनुच्छेद 226 के तहत राहत मांगी जाती है, यह पता लगाना संभव होगा कि जिस काम की शिकायत की गई है, वह कहाँ किया गया था; या, जब किसी चूक के खिलाफ राहत मांगी जा रही हो, तो यह पता लगाना संभव होगा कि वह काम कहाँ किया जाना चाहिए था। एक बार जब यह जगह तय हो जाती है, तो जिस हाई कोर्ट का उस जगह पर अधिकार क्षेत्र होता है, केवल उसी हाई कोर्ट के पास अनुच्छेद 226 के तहत राहत देने का अधिकार होता है। मेरी राय में, "उचित मामलों में" शब्दों का यही स्वाभाविक परिणाम है।

अपीलकर्ता की ओर से रैयत, गरबान्धो बनाम जमींदार, पार्लाकिमेडी (1) मामले में प्रिवी काउंसिल के फ़ैसले के आधार पर यह तर्क दिया गया कि अनुच्छेद 226 के तहत कार्रवाई करने के लिए किसी हाई कोर्ट को अधिकार क्षेत्र देने हेतु केवल यह आवश्यक है कि 'कॉज़ ऑफ़ एक्शन' (मुकदमे का आधार) का कुछ हिस्सा उन क्षेत्रों के भीतर उत्पन्न हुआ हो, जिनके संबंध में वह अपना अधिकार क्षेत्र प्रयोग करता है। यह प्रश्न कि क्या 'कॉज़ ऑफ़ एक्शन' संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत राहत के लिए अधिकार क्षेत्र को आकर्षित करता है–जैसा कि मुकदमों

(1) (1943) एल.आर. 70 आई.ए. 129.

के मामले में होता है–इस न्यायालय द्वारा साका वेंकट सुब्बा राव (1) के मामले में विचार किया गया था, और इसका उत्तर नकारात्मक (नहीं) में दिया गया था। पार्लाकिमेडी (2) के मामले में प्रिवी काउंसिल के फ़ैसले का संदर्भ देते हुए, इस न्यायालय ने यह इंगित किया कि वह फ़ैसला किसी ऐसे वैधानिक प्रावधान की व्याख्या पर आधारित नहीं था, जो दायरे, उद्देश्य या शब्दावली में संविधान के अनुच्छेद 226 के समान हो; अतः वह फ़ैसला उस अनुच्छेद की व्याख्या करने में बहुत अधिक सहायक नहीं है। न्यायालय का फ़ैसला सुनाते हुए मुख्य न्यायाधीश पतंजलि शास्त्री ने यह भी टिप्पणी की:--

"मुकदमों में 'वादमूल' (कॉज़ ऑफ़ एक्शन) के आधार पर क्षेत्राधिकार तय होने का नियम, वैधानिक प्रावधानों पर आधारित है और यह अनुच्छेद 226 के तहत जारी होने वाली रिट पर लागू नहीं हो सकता; क्योंकि अनुच्छेद 226 में न तो किसी 'कॉज़ ऑफ़ एक्शन' का ज़िक्र है और न ही यह बताया गया है कि वह कहाँ उत्पन्न होता है, बल्कि यह इस बात पर ज़ोर देता है कि वह व्यक्ति या प्राधिकारी 'उन क्षेत्रों के भीतर' मौजूद हो, जिनके संबंध में उच्च न्यायालय अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग करता है।"

यह निर्णय हम पर बाध्यकारी है, और मैं विनम्रतापूर्वक यह कहना चाहूँगा कि मुझे इसकी सत्यता पर संदेह करने का कोई कारण नज़र नहीं आता।

यह सच है कि उस मामले में, कोर्ट को सरकार के अलावा किसी अन्य अथॉरिटी के संबंध में अधिकार-क्षेत्र के सवाल पर विचार करना पड़ा था। हालाँकि, यह समझना मुश्किल है कि अगर 'कॉज़ ऑफ़ एक्शन' (मुकदमे का आधार) सरकार के अलावा अन्य व्यक्तियों और अथॉरिटीज़ के खिलाफ अधिकार-क्षेत्र को आकर्षित नहीं कर सका, तो वह सरकार के खिलाफ अधिकार-क्षेत्र को कैसे आकर्षित करेगा। मुझे यह साफ़ लगता है कि अधिकार-क्षेत्र को 'कॉज़ ऑफ़ एक्शन' पर आधारित करने का सिद्धांत संविधान के अनुच्छेद 226 या अनुच्छेद 32(2ए) के तहत संविधान में शामिल नहीं किया गया है।

पहली नज़र में ऐसा लग सकता है कि यह मानना कि जिस हाई कोर्ट के अधिकार क्षेत्र में शिकायत की गई कार्रवाई या चूक हुई है, उसी का अधिकार क्षेत्र होगा–असल में, अधिकार क्षेत्र का आधार 'कॉज़ ऑफ़ एक्शन' (मुकदमे का कारण) के उत्पन्न होने को स्वीकार करना है। हालाँकि, यह सही नहीं है। जिस हाई कोर्ट के अधिकार क्षेत्र में वह कार्रवाई या चूक होती है, उसका अधिकार क्षेत्र इसलिए नहीं होता कि 'कॉज़ ऑफ़ एक्शन' का कोई हिस्सा वहाँ उत्पन्न हुआ था, बल्कि ऐसा "उपयुक्त मामलों में" शब्दों के प्रयोग के परिणामस्वरूप होता है।

I. (1) [1953] एस.सी.आर. 1144 (2) (1943) एल.आर. 70 आई.ए. 129

हाई कोर्ट के जिन कई मामलों में हमारे सामने मौजूद प्रश्न पर विचार किया गया है, उनका ज़िक्र बहुमत के फ़ैसले में और साथ ही जस्टिस सुब्बा राव के फ़ैसले में भी किया गया है; इसलिए उन पर दोबारा चर्चा करने का कोई फ़ायदा नहीं होगा।

ऊपर बताए गए कारणों के आधार पर, मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि यद्यपि भारत सरकार भारत के प्रत्येक उच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र में आती है, फिर भी एकमात्र वही उच्च न्यायालय अनुच्छेद 226 या अनुच्छेद 32 (2ए) के तहत उसके विरुद्ध कोई रिट, आदेश या निर्देश जारी करने का अधिकार रखता है, जिसके अधिकार क्षेत्र में वह कार्य या चूक हुई हो, जिसके विरुद्ध राहत की माँग की गई है।

प्रस्तुत मामले में, जिस कार्य के विरुद्ध राहत की मांग की गई है, वह स्पष्ट रूप से दिल्ली में किया गया था; जो पंजाब उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार के अंतर्गत आने वाले क्षेत्रों में स्थित है। अतः, जम्मू और कश्मीर उच्च न्यायालय अनुच्छेद 226 के तहत अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग नहीं कर सकता।

अतः, मैं मुख्य न्यायाधीश से सहमत हूँ कि अपील को खर्च सहित खारिज कर दिया जाना चाहिए।

न्यायालय द्वारा। न्यायालय के बहुमत की राय के अनुसार, यह अपील खर्च सहित खारिज की जाती है।

अपील खारिज की जाती है।

यह अनुवाद सुश्री लीना मुखर्जी, पैनल अनुवादक के द्वारा किया गया।